14/18

श्री श्री महाराज्ञी प्रादुर्भावः

(भृङ्गीशसंहिता--तः)

Shri Shri Maha-Rajni Pradurbhavah

(A leaf from Brngisha Samhita)

अनुवाद (हिन्दी)

पं० प्रेमनाथ हण्डू, (पुस्तकालयाध्यक्ष)

शीतल-नाथ, सत्थू ।

Hindi Translation

Shri Prem Nath Handoo (Librarian)

Shital Nath, Sathu, Srinagar.

भूमिका, पुनरावलोकन, टिप्पणी, तथा आङ्गलानुवाद

प्रो० काशी नाथ दर

निदेशक :-

श्री परमानन्द रिसर्च इन्सटिच्यूट, श्रीनगर ।

Introduction, revision, notes and English Translation

Professor K. N. Dhar

Director

Shri Parmananda Research Institute (Regd.)

Publishers :- **Shri Parmananda Research Institute Regd.**

Srinagar, Kashmir.

a] Name of the book : "Maharajni Pradurbha
b] Translation [Hindi]- Shri Prem Nath Han
(Shital Nath, Sathu.)

c] Introduction notes & English rendering etc. Professor K. N. Dh

d] Press at which Printed: Aparna Printing Pre
Srinagar.

e] Block-Printing & Binding : Bansi Art Press, Nai Sarak, Srina

f] Publishers : **Shri Parmananda Research Instt. Srinagar.**

(Under auspices of Shri Rupa Devi Sharada Peetha Trust

Year of Publication : **1981 A. D.**

Price Rs. **11 . 50**

BOARD OF TRUSTEES

1) Dr. (Mrs.) Vimla Dhar (*President*)
2) Prof. S. L. Sadhu
3) Dr. S. N. Peshin
4) Shri A. K. Mattoo
5) Dr. S. N. Dhar
6) Prof. K. N. Dhar
7) Shri G. L. Shah
8) Shri M. L. Dhar
9) Shri N. N. Dangroo (*Secreta*

Rights of Adaptation and Reproduction
rest entirely with
Shri Rupa Devi Sharada Peetha Trust (Regd.)
Srinagar.

श्री श्री महाराज्ञी प्रादुर्भावः ।

भूमिका :–

प्रातः-स्मरणीय कश्यप ऋषि की लाड़ली मानस–पुत्री कश्मीर की पावनता चिर–विख्यात है; प्रकृति ने इसके बाह्य-सौन्दर्य को जितना आकर्षक बनाया है; उतना ही इस का आन्तरिक आत्मा सम्बन्धी स्निग्ध–मधुर उन्नयन विश्व–मनीषा के लिये वरदान प्रमाणित हुआ है; शरीर और आत्मा की समस्वर धड़कनों का मनोहारी सरगम हमें यहीं देखने–परखने के लिए प्राप्य है। जब से इतिहास ने आँखे खोलीं तब से बराबर यह सती-देश मानव की भटकी–भूली मेधा को स्वस्थ–जीवन–दर्शन का पाठ पढ़ाता आया है; जीवन की बहुरंगी विविधता में समरस एकता का प्रांजल सन्देश यहीं से प्रवाहित होकर 'वितस्ता' की मस्तानी चाल में समोकर यहां की संस्कृति का अभिषेक करता आया है, यह संस्कृति इसी कारण हर समय प्राचीन और नवीन के बीच का रास्ता आत्मलाभ के लिए खोजती रही है; नवीन को यह प्राचीन की नई आस्थाओं तथा मांगों के अनुरुप पुनर्व्याख्या समझती आई है, पुनरावृति कदापि नहीं । यही मूल–मन्त्र इस के चिर–यौवन की ज़मानत है । कश्मीर की सदा - बहार संस्कृति ने समन्वय का दृष्टिकोण अपनाकर जहाँ अपनी अचूक जाग–रुकता का परिचय दिया है; वहां यहाँ के जन–जीवन को समय की नाड़ी के साथ हो लेने की शिक्षा भी दी है; 'वितस्ता' की धीर–गम्भीर लहरियों के साथ क़दम मिलाने की प्रेरणा दी है। यही कारण है कि यहाँ के जन-मानस का जीवन–दर्शन तन्त्रों और

शैवागमों में अधिक आस्था रखता है; क्योंकि इन में रुढ़िवाद के स्थान पर सक्रिय मननशीलता को ही 'आत्मचैतन्य' का सबल सोपान माना गया है। यही हमारी सनातन थाती भी है।

तन्त्रों के सम्बन्ध में कई विद्वानों का मत है कि इन का प्रचलन वेदों से भी पूर्व का है। 'मोहन-जो-दड़ो' तथा 'हरप्पा' की खुदाई की जांच करते समय तन्त्र-पद्धति पर आश्रित कई अवशेषों का वहां पर पता लगा है; यहाँ तक कि जटाधारी शिव की एक मूर्ति भी मिली है जो एक ईंट पर उत्कीर्ण की गई है।[1] यही शिव तन्त्र-परम्परा का आदिस्रोत माना गया है; जिसे आगे चलकर कश्मीर के अभेद-शैव-दार्शनिकों ने एक प्रांजल तथा सर्वग्राही लक्षण से विभूषित किया :-

पाशबद्धो जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः [2]।

सम्भवतः परमसत्ता की इतनी सरल और सहज बोधगम्य व्याख्या हमें देखने को कहीं और नहीं मिलती। तन्त्रों के अनुसार 'सदाशिव' और 'आदिशक्ति' एक दूसरे के पूरक हैं; पहला तो परमसत्ता का अव्यक्त विश्वोत्तीर्ण रुप है; और दूसरा उसी का व्यक्त विश्वमय रुप;[3] यह सम्बन्ध अभेदात्मक है; शिव और शक्ति के बीच की दूरी भ्रमजन्य है; माया की तिरोधनकारी ऐंद्रजालिकता है।[4] जब 'आत्म-चैतन्य' की मीठी आँच आत्मा के उन्नयन का पथ प्रशस्त करती है तब शिव और शक्ति के बीच की मोम की दीवार स्वतः सिद्ध पिघल उठती है; दोनों एकाकार हो उठते हैं; भेद का क्षणिक सम्मोहन अभेद की स्थायी मिठास के लिये जगह छोड़ देता है; इसे ही परम-आनन्द की संज्ञा भी दी गई है; जिसका आधार अनुभव के माध्यम से

---

1) सर जॉन मार्शल—रिपोर्ट,
2) कुलार्णव तन्त्र—पृ० २४१,
3) तन्त्रालोक, I, १०५,
4) ईश्वर प्रत्यभिज्ञा, III, १, ७,

अनुभूति है। यही मानसिक प्रक्रिया अध्यात्म की जीवन दायिनी बयार से परिपुष्ट होकर मानव के जन्म को सार्थकता प्रदान करती है—'पशु' से 'पति' बनने की संजीविनी है।[5]

चिर–सनातन मूल्यों में अड़िग आस्था रखने वाले हिन्दुओं की मेधा ने इसी कारण सांसारिक (विश्वमय) आस्थाओं के अनुरुप इस शिव की 'शक्ति' को ही स्पष्ट कारणों से अधिक महत्व दिया है। जगत की भूल–भल्लियों से ऊपर उठने के लिए इस जगत में ही साँस लेने वाले जीवात्मा के लिये वैसा ही सुगम्य साधन जुटाना अभीष्ट था, जिसे वह अपने बुद्धि से परे न समझ बैठे, और फलस्वरुप मन हार कर अध्यात्म–लाभ से वञ्चित रहे; जिस प्रकार लोहा ही लोहे को काटने का सशक्त साधन है उसी प्रकार विश्वमयता ही विश्व से ऊपर उठने का सबल तथा स्वाभाविक अस्त्र है; विष को इसी लिये विष–निसृति का औषध माना गया है।

तन्त्रों के इसी दृष्टिकोण की सर्वविदित उपादेयता से प्रेरित होकर ही, हिन्दुओं ने अव्यक्त के व्यक्त रुप में 'देवी' का आभास अधिक गहरे रंगों में पाया है; इसी कारण उसे जगज्जननी अथवा जगन्माता की उपाधि भी दी गई है।[6] जगत के प्रपञ्च को जन्म देने वाली और इस से जीवात्मा को त्राण देने वाली, यही दोहरा कर्तव्य 'देवी' के लिये सुनिश्चित किया गया है; वह एक ही समय में जीवन की विविधता की सूत्र-धारिणी है, और इस में निहित एकात्मकता की अग्रदूत भी; इसी परिप्रेक्ष्य में हमारे लिये महाराज्ञी के प्रादुर्भाव का वृतान्त समझना अधिक श्रेयस्कर होगा।

इसके अतिरिक्त यह कह देना भी संगत होगा कि माता का वात्सल्य एक शिशु के लिये दैवी वरदान माना गया है;

---

5) त्रिपुरा-रहस्यम्, पृ० ११-१२.
6) सौन्दर्यलहरी, पंचस्तवी इत्यादि

एक नवदीक्षित साधक वास्तव में शिशु–समान ही होता है, अपनी माता के सामने वह दिल खोलकर मन की बात रख सकता है, उस में संकोच अथवा झिझक नाम को भी नहीं होती, माता का क्षमाशील हृदय उस शिशु (भक्त) की न्यूनताओं के प्रति उतना उत्सुक नहीं होता, जितना उस की उपलब्धियों के प्रति। अतः वह हर समय आगे बढ़ने के लिये, आत्मलाभ करने के लिए उसकी उँगली थामे उसे प्रेरणा देती रहती है; इस प्रकार का सुखद वातावरण सम्भवतः उसे पिता से सुलभ नहीं हो सकता। 'देवी' को माता–रूप में देखने की यही भावना आदिकाल से हिन्दु-मन और मस्तिष्क को सींचती आरही है। जभी तो कहा गया है कि पुत्र कुपुत्र हो सकता है; परन्तु माता कुमाता कदापि नहीं बन पाती;[7] यही कारण है कि कश्मीर को 'उमा' के नाम से भी सम्बोधित किया गया है;[8] सतीदेश कहा गया है;[9] माता की तरह पालने–पोसने वाली उत्संग की प्रतिमूर्ति। शिवमण्डल होते हुये भी यह प्रदेश शक्तिपीठ के नाम से अधिक जाना–माना गया है।

तन्त्रों का संशोधित तथा बोधगम्य संस्करण शैव–दर्शन है; महामाहेश्वर अभिनव गुप्त ने इस दिशा में हमारा उचित मार्गदर्शन किया है।[10] शैव–शास्त्र में 'भैरव' शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है, और इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है –

"उद्यमो भैरवः"।[11]

जीव तब ही भैरव–दशा को प्राप्त हो सकता है जब उस में 'उद्यम'— आगे बढ़ने की लगन कभी ठण्डी न पड़ जाये; इस लगन में मन और शरीर दोनों का साँझा सहयोग है;[12] जब भी तराज़ू के इन दो पलड़ों में स्वस्थ सन्तुलन स्थिर रह सके, तब जीव ससीमता के बन्धनों से परे होकर असीम का सान्निध्य प्राप्त कर सकता है, भैरव पद पासकता है; भरण रमण और वमन के मौलिक शक्तिसंचय अथवा प्रचय का

7) शङ्कराचार्यकृत देव्यापराधक्षमापनस्तोत्रम्।

8) नीलमतपुराण-श्लोक 292; 9) राजतरङ्गिणी–I, 25;

10) द्रष्टव्य तन्त्रालोक; 11) शिव-सूत्र–v;

12) शिवसूत्रविमर्शिनी क्षेमराजकृत, पृ॰ 18-19.

अधिष्ठाता बन जाता है;[13] वह दिशा और काल की परिधि में बांधा नहीं जासकता; भूत, वर्तमान और भविष्य उसकी त्रिकाल दृष्टि के चेरे बन जाटे है; यही कारण है कि भैरवी भैरव से ही हर समय शंका समाधान की इच्छुक रहती है; तन्त्रों में भैरव और भैरवी के संवाद द्वारा ही इन गूढ तत्त्वों को वाणी प्रदान की गई;[14] 'महाराज्ञी प्रार्दुभाव' में भी स्पष्ट कारणों से यही परिपाटी अपनाई गई है ।

प्रस्तुत माहात्म्य में रावण के घर में प्रतिष्ठित आदिदेवी को 'तामसी' कहा गया है; तामसीवृत्ति आसुरी मानी गई है,[15] अत: रावरण के घर में उसका ऐसा रुप धारण करना सहज में समझा जा सकता है; जब यही देवी मानवों तथा देवों से पूजित होती है तो यह रजोगुणी अथवा सतोगुणी बन जाती है, यह तो वास्तव में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है, विषय और विषयी का सम्बन्ध है, पदार्थ और उसका आभास-मात्र है । 'श्यामा' का कश्मीर भूमि में आने के बाद' महाराज्ञी' पदवी तथा नाम प्राप्त करना इसी तथ्य का परिचायक है ।[16]

दूसरी बात 'महाराज्ञी' को द्वितीया अथवा तरुणी मानने के सन्दर्भ में है ।[17] द्वितीया' तो नवदुर्गा का ब्रह्मारिणी रुप है ।[18] शैवधर्म में इस रहस्य को इस तरह खोल कर रख दिया गया है :-

'इच्छा भगवती उमा कुमारी' ।[19]

मन की तरंग (इच्छा) भोगप्रदा (भगवती) है, बिना आयास के (उमा) चिर-नवीन (कुमारी) है । यही 'इच्छा' जगत का आदिकरण

---

13) शिवसूत्र-iii-30; 14) द्रष्टव्य तन्त्रादिग्रन्था: ।
15) भगवद्गीता xiv-8; 16) प्रस्तुत माहात्म्य श्लोक I, 54;
17) वही श्लोक-II, 55,56,57,
18) दुर्गासप्तशती-कवच, 19) शिवसूत्र-13,

मन की उड़ान तो कितने ही संसारों को उत्पन्न करती है; उजाड़ती है, बना-बना कर फिर से बिगाड़ती है; सृजन और विसर्जन इस की मूल–भूत विशेषता है. संसर्ग और विसर्ग, सृष्टि और प्रलय इस का स्वभाव है; इसी 'इच्छा' देवी के अमुक रुप को इसके अन्य रूपों से अपेक्षाकृत अधिकश्रेष्ठ समझती है; और जिस रुप-रेखा के परिवेश में देवी को देखना चाहती है, झट देवी मातृवात्सल्य से अभिभूत होकर बिना किसी प्रतिरोध के वैसा ही रुप धारण करती है; यह सत्य तो सब पर विदित है कि भक्त जिस भाव से अनुप्राणित होकर अपने इष्ट की आराधना करता है उसी भाव के अनुरुप इष्ट भी अपने आप को ढाल लेता है।[20] इस तथ्य में स्वान्त: सुख और लोक-हित दोनों संजोये रहते हैं । एक विशेष इच्छा (संकल्प) की पुनरावृति नहीं होती; आत्मतुष्टि पाकर इच्छा नये क्षितिजों को छूने का प्रयास करती है; अन्य इच्छा जन्म लेती है जो पिछली को बासी बना देती है, अतः यह हर समय शुद्ध सरस और स्वतन्त्र है, कुमारी है । आत्म-निर्भर होने के कारण इसे किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं रहती. अतः कुँवारी है, विवाहिता नहीं । 'तरुणी'[21] शब्द का प्रयोग भी इसी तथ्य को पुष्टि करता है । देवी का व्यक्तित्व अपने आप में परिपूर्ण है. अविभाजित है ।

इसी देवी को 'त्रिपुरा' नाम से भी अभिहित किया गया है ।[22] इसमें किसी प्रकार के आश्चर्य में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है । देवी का त्रयात्मक रुप तो 'पँचस्तवी' की आधार शिला है।[23] यहाँ तक कि भारत का धर्म, संस्कृति और दर्शन इसी त्रयात्मकता का ऋणी है, जिसे हिन्दुओं की उपजाऊ प्रतिभा ने त्रिमूर्ति–ब्रह्मा, विष्णु और महेश के गुणों—सृजन, पालन तथा संहार—से सम्पन्न किया है । तन्त्रों के अनुसार इन तीनों गुणों का समवाय हमें भैरव-रूप में परिलक्षित होता है । जीवन

20) भगवद्गीता-iv, ii, 21) प्रस्तुत माहात्म्य, श्लोक-I, i,
22) वही-श्लोक, 23) I, 16,

के सांसारिक, अध्यात्मिक तथा अधिदैविक व्यापारों में यही त्रयात्मकता हर ओर कार्य-रत दिखाई देती है; इसी त्रयात्मकता की अधिष्ठात्री को त्रिपुरा अथवा त्रिपुर-सुन्दरी के नाम से अलंकृत किया गया है;[24] 'त्रिपुरा-माहात्म्य' में इसे भी अविवाहिता, कुमारी माना गया है; अतः जिन कश्मीरी घरानों विशेषत: तिकू-हण्डू कुलों (त्रिक्) में देवी के इस त्रिपुरा-रुप का पूजन होता है वे इसकी मूर्ति पर आँखे बन्द करके अथवा इन पर पट्टी बाँध पर, जल, पुष्प और अर्घ्य चढ़ाते हैं। प्रस्तुत माहात्म्यकार ने 'तरुणी' द्वितीया' का प्रयोग करके 'त्रिपुरा' नाम से अपने निष्कर्श की पुष्टि की है, ज़ोरदार सर्मथन किया है।

इस प्रकार हम इस धारणा को मुखर करने में कोई आपति नहीं समझते कि 'महाराज्ञी' का देवी-स्वरुप महात्म्यकार के शब्दों में सर्वोपरि है, राजराजेश्वरी है।[25] यद्यपि त्रिपुरा शब्द की निरुक्ति भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से की गई है, परन्तु माहात्म्य के भावपक्ष का गहन अध्ययन करने के पश्चात यह बात हम पर बिल्कुल साफ हो जाती है कि माहात्म्यकार ने इसे 'परा' 'अपरा' और 'परापरा' इन तीन दशाओं का प्रतीक–मात्र समझा है; अत: इन पारिभाषिक शब्दों को बार बार दुहराया भी गया है।[26] यह भी सम्भव है कि तन्त्र, यन्त्र और मन्त्र की तिकोणी आराधना ही महाराज्ञी को प्रिय है, इन शब्दों का भी प्रस्तुत माहात्म्य में प्रचुर प्रयोग किया गया है। यही कारण भी है कि राज्ञी-कुण्ड़ के मध्य निर्मित मन्दिर में इसी 'राज्ञी-यन्त्र' की प्रधान रूप से पूजा की ज़ाती;[27] अन्य स्थापित मूर्तियों–शिव अथवा देवी का–महत्त्व गौण है; लोक–विश्वास के आधार पर हम यह कहना समीचीन समझते है कि जनता वास्तव में इस कुण्ड़ (नाग) को ही 'महाराज्ञी' का विश्वमय

---

24) त्रिपुरा-रहस्यम्, 25) श्लोक-I, 32,

26) द्रष्टव्य श्लोक I, 1, इत्यादि,

27) द्रष्टव्य संलग्न 'राज्ञी यन्त्र'

रुप समझती हैं; इस 'महाराज्ञी' का प्रसाद इस के बीज-मन्त्र के जाप से सुलभ है, अतः इस कुण्ड का आकार भी जपमाला की कुथिका के अनुरुप है;[28] काश्मीरी जन-मानस इसे 'ज़पकोंथुज' की संज्ञा देते हैं, जिसका अर्थ वही है जो ऊपर दिया गया है। इसी प्रसंग में यह बता देना भी समुचित प्रतीत होता है कि किन्ही समझ में न आने वाले कारणों से 'महाराज्ञी के वर को 'भूतेश्वर' का नाम दिया गया है, जबकि माहात्म्यकार इस सन्दर्भ में मौन है और साथ ही इसे 'कुमारी' समझता है; सम्भवतः यह भ्रम 'महाराज्ञी सहस्रनाम' की इस पंक्ति से पैदा हुआ है :-

"भूत भूतेश्वरप्रिया ।"

भूतेश्वर से पहले 'भूत' शब्द आने से इस प्रकार का अनुमान सारहीन दिखाई देता है; तामसी रुप में देवी भूतें, भूतेश्वर की प्रिया तो अवश्य है; यह वह अवस्था है जब देवी ने महाराज्ञी का सात्त्विक रुप अभी धारण नहीं किया था ।

तामसी रुप में देवी कीं अर्चना रावण लङ्का में करता था; परन्तु ज़ब देवी ने यह अनुभव किया. कि रावण का अन्तःकरण लाख यत्न करने पर भी अपने तमोगुण से विहीन नहीं हो पायेगा, तो उसने सतीदेश में आने का शुभ संकल्प किया,[29] यहाँ पर इस तथ्य की भी ध्वनि स्पष्ट है कि देवी अपने तामसी रुप को केवल असुरों के लिये सुरक्षित रखना चाहती थी; मानवों के लिए उसका नितान्त शुद्ध-सात्विक रुप ही श्रेयस्कर रहेगा; इसीलिए उसकी प्रीति दूध, क्षीर, मिष्ठान इत्यादि में ही है[30]—'क़ाली' आदि की तरह मांस. लहू इत्यादि में नहीं । यह भी सम्भव है कि अनार्य संस्कृति (लङ्का में) उस का तामसी रुप जन-मर्यादा के अनुरुप था, और जब देवी ने इस अनार्य संस्कृति से विदा ली तो आर्य-संस्कृति के मूल-भूत विश्वासों के अनुरुप उसे

28) द्रष्टव्य संलग्न 'कुण्ड' का प्रारुप;

29) प्रस्तुत माहात्म्य-श्लोक-I, 31;

30) वही-श्लोक-I, 49,

अपने आप को प्रकट करना पड़ा, यह रुप राजसी तरुणी (तथा) सतोगुण मिश्रित था; इस प्रकार यह अनुमान लगाना सहज बन जाता है कि 'महाराज्ञी' की परिकल्पना आर्य विश्वासों के परि-वेश में की गई है; देवी को अनार्य-संस्कृति के प्रति विमुख होने तथा आर्य-संस्कृति का स्वागत कराने में श्री राम का बड़ा हाथ रहा होगा, क्योंकि इसका शुभ-नाम भी इस माहात्म्य में कई बार आया है;[31] और जब वायु के वेग से चलने वाली तूफानी सवारी-हनुमान की सेवा देवी को उपलब्ध हुई,[32] तो इस अनुमान की स्वत: पुष्टि हो जाती है ।

लङ्का से विदा लेकर देवी कश्मीर प्रदेश की दक्षिणी पर्वतीय प्राचीर 'पांचाल' तक आगई; माहात्म्यकार इस से पूर्व भारत के ऊपर से देवी की उड़ान का कोई व्योरा नहीं देता, जिसके लिये वह बाध्य भी नहीं, क्योंकि उस का लक्ष्य सतीदेश में आकर ही देवी की परिचर्या का विवरण देना था; यह भी संम्भव है कि हनुमान ने कौए की उड़ान'[33] के मार्ग का अनुसरण करके उसे पांचाल तक पहुंचाया हो; आज़कल भी वायुयान इसी मार्ग का सहारा लेते हैं; हनुमान भी तो एक सप्राण 'जट' वायुयान ही था; सतीदेश के विस्तृत विवरण की अपेक्षा अब स्पष्ट कारणों से थी, जो दायित्त्व माहत्म्यकार ने सुचारु रुप से निभाया है ।

प्रतीत होता है कि देवी का सतीदेश में पर्दापण उस समय हुआ जब अभी बाणशाला (बानिहाल) का द्वार घाटी में प्रवेश करने के लिए उपयोग में नहीं लाया जाता था, चूंकि देवी बहुत प्राचीन काल में यहाँ वास-हेतु आई तो इस ने वही मार्ग अपनाया जो उस समय प्रचलित रहा होगा; यह मार्ग 'पाँचाल-

---

31) देखिये श्लोक I-50, इत्यादि, 32) श्लोक I-33,
33) As the crow flies.

धारा' के नाम से प्रसिद्ध है जिस की तलहटी में 'शूरपुर' (हुरपोर) स्थित है, जिसे महाराज अवन्तिवर्मन् के मन्त्री 'शूर' ने बसाया था।[34] यहीं से शुपियाँ को रास्ता जाता है, जो उस समय में घाटी में प्रवेश करने का प्रथम पड़ाव था। इसी परगने में 'कपाल मोचन' भी है, जहाँ सर्वप्रथम देवी ने विश्राम किया।[35] तब 'मड़वराज्य' (मराज़) में भिन्न-भिन्न स्थानों को अपने स्पर्श से पवित्र बनाती हुई, वह 'क्रमराज्य' (कमराज़) में वाराहक्षेत्र तक जाकर फिर वापस मुड़ी, और तदनन्तर सिन्धु-वितस्ता संगम के समीप 'तूलमूल्य' (तुलमुल) को इसने अपना स्थायी निवास-स्थान चुना। 'तूलमूल्य' गाँव का वर्णन कल्हण ने भी किया है और प्रतीत होता है कि यह ब्राह्मणों की एक भारी बस्ती थी;[36] ब्राह्मणों के ही इस इलाके में देवी का अपना निवास सिद्ध करना स्वत: स्पष्ट है; उसका शुद्ध-सात्त्विक रुप ब्राह्मणों के लिये जो स्वयं इन दोनों गुणों से सम्पन्न थे, वरदान से कुछ कम नहीं था। इस यात्रा-वृत से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर की भूगौलिक सीमा दक्षिण से पश्चिम तक पाँचाल से आरम्भ होकर बाराहक्षेत्र (बारामुला) तक आकर समाप्त हो जाती थी; लगभग इसी परिधि का उल्लेख नीलमत में भी किया गया है।[37] उस समय कश्मीर प्रदेश का भूगौलिक प्रारुप ऐसा ही था; 'क्रमसर' (कौंसरनाग) में 'नौबन्धन' से लेकर वाराहक्षेत्र तक ही, जहाँ सतीसर के पानी का निष्कासन करने के लिए वासुकि ने पर्वत में छिद्र कर दिया था।[38]

कश्मीर की घाटी में पहुंच कर देवी ने जिन-जिन स्थानों को तुलामुला में स्थायी विश्राम करने से पहले अपनी चरणधूलि से पवित्र किया. यदि उन का भूगौलिक आधार पर मान-चित्र तैयार किया जाये, तो स्पष्ट हो जाता है कि यह यात्रा भी

---

34) राजतरङ्गिणी-v. 39,

35) श्लोक I, 34,

36) राजतरङ्गिणी iv, 638,

37) श्लोक 231,

38) श्लोक 217-218,

'जयकुथिका' के प्राकार को दर्शाती हुई सम्पन्न की गई; संलग्न मानचित्र से इस बात की पुष्टि होती है । इस प्रकार हमें यह सिद्ध करने में कोई संकोच नही कि 'महाराज्ञी' का स्तवन जप द्वारा ही किया जाना चाहिए; लाक्षणिक रुप से देवी ने स्वयं इस प्रकार का निदेश दिया है; माहात्म्यकार भी इसी सत्य की मीमांसा करते नहीं अघाता।[39]

प्रस्तुत माहात्म्य में देवी के 'श्यामा-रुप' का अतिशय वर्णन किया है; शाब्दिक अर्थ द्वारा इसे साँवली, अथवा कृष्ण-वर्णा कहना ठीक होगा, जभीं तो 'महाराज्ञी' के जिस पार्वती-रुप को नाग के बीच में बने मन्दिर में स्थापित किया गया है, वह साँवला ही है। परन्तु इस सन्दर्भ में शब्दों का कोष-अर्थ हमारा पथप्रदर्शन करने में असमर्थ है, क्योंकि तन्त्र-विज्ञान में शब्दों के पारिभाषिक अर्थ को ही महत्ता दी गई है, तथा इन्हीं के प्रसंग द्वारा तन्त्र-पद्धति समझ में आसकती है ।

'श्यामा' को 'सकलजननी' कहा गया है।[40] 'शारिका' को भी 'श्यामा' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।[41] आदि शक्ति के अनेक रुपों को भी इसी नाम से पुकारा गया; है कभी कभी 'नीलाश्मद्युति' अथवा 'श्यामाङ्गी'[42] के रुप में भी इसे सम्बोधित किया गया है । श्यामा अथवा श्यामवर्णा स्त्री का लक्षण तपे हुये सोने के रँग वाला, शीत में जिस का अङ्ग गर्मी प्रदान करते हैं, और ग्रीष्म में जिसका स्पर्श शीतल होता है इस प्रकार दिया गया है; इसे ''अप्रसूताङ्गना''[43] भी कहा गया है। सम्भवत: इन्हीं व्यक्त गुणों के कारण माहात्म्यकार ने इसे 'तरुणी' और 'द्वितीया' आदि नाम भी दिये हैं, जिनका उल्लेख पहले किया गया है; परन्तु इस सम्बन्ध में तन्त्र-विश्वासों के परि-वेश में ही इस विशेष शब्द का अर्थ खोजना अधिक संगत रहेगा।

---

39) द्रष्टव्य I. 59. 40) पञ्चस्तवी v, 37;

41) श्री शारिका माहात्म्य;

42) अर्गला स्तोत्रम्—मार्काण्डेय पुराण; पंचस्तवी v, 14 आदि

43) मेदिनी,

कालिका–पुराण में 'श्यामा' की उत्पति का विशद व्योरा देकर यह ससझाने की चेष्टा की गई है कि 'श्यामा' वास्तव में 'काली का ही एक नाम है।[44] कालीतन्त्र में इसी अर्थ को पुष्ट करके इसे 'विद्याराज्ञी' के अन्य नाम से भी पुकारा गया है । 'दुर्गा सप्तशती' में भी महाकाली' के वर्ण को 'नीला' कहा गया है; अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि 'श्यामा' देवी का काली रूप है. जिसके अनुरुप ही माहात्म्यकार ने इसे 'तामसी' भी कहा है। दुर्गा का व्यक्तित्त्व काली (तमोगुण) लक्ष्मी (रजोगुण) तथा सरस्वती (सतोगुण) से ओत-प्रोत है; तामसी अवस्था में इसे काली अथवा श्यामा कहा जायेगा, राजसी अवस्था में इसे लक्ष्मी के परिधान से पहचाना जायेगा और सात्वकी अवस्था यह सरस्वती का पर्याय बन जायेगी; 'महाराज्ञी' इस तथ्य के प्रकाश में 'लक्ष्मी' (रजोगुण) तथा सरस्वती (सतोगुण) की प्रतीक है; सांसारिक व्यापारों को प्रेरणा देने वाली यह संसार से परे भी है, व्यक्त भी है अव्यक्त भी है, भोग और मोक्ष दोनों की जननी है, भक्ति तथा मुक्तिप्रदायिनी[45] नाम से इसी कारण 'लक्ष्मी' को पुकारा गया है । संसार के रँगमँच पर वह एक महाराज्ञी की तरह आसीन है, सृष्टि को स्वयं पैदा करके इस की इन्द्रजालिक विचित्रता से जगत का रँजन करती है, परन्तु साथ ही इस नानारँगी सृष्टि से ऊपर उठ कर भक्त के लिये मुक्ति के द्वार भी खोलती है; राग और विराग दोनों की प्रेरणा-दायिनी आदिशक्ति है, महामाया है । वह जीवन भी है और जीवन से दूर भी है। अतः इस बात की ओर इशारा करना ठीक रहेगा कि महाराज्ञी को श्यामाकारा' बनाना उसको लक्ष्मी तथा सरस्वती रुप के यथातथ्य नहीं, यह वही तामसी रुप है जो देवी लङ्का में ही छोड़ आई थी; अन्य देवियों शारिका, ज्वाला, भद्रकाली आदि

---

44) अध्याय, 8,

45) महा-लक्ष्मी-स्तोत्र,

को इसी कारण श्याम-वर्ण से विभूषित नहीं किया गया है। रजोगुणी वृत्ति के नितान्त अनुरुप शारिका' को 'अरुण-सिन्दूरी' वर्ण से अलङ्कृत किया जाता है।[46] प्रस्तुत माहात्म्य के द्वितीय पटल में इस तथ्य की विशद व्याख्या की गई है।

× × ×

श्रद्धालु जन-समुदाय की सेवा में यह 'महाराज्ञी प्रादुर्भाव:, नामक माहात्म्य सविनय समर्पित है; आशा है कि वे इस के श्लोकों में से टपकने वाली ध्वनि से पूरी तरह अवगत होकर महामाया के इस विलक्षण रुप की महिमा को हृदयंगम करके हमारे परिश्रम को सार्थकता प्रदान करेंगे; इसी कारण अनुवाद के साथ–साथ विशद–रुप में टिप्पणियों का भी इस माहात्म्य में समावेश किया गया है। साथ ही महाराज्ञी-यन्त्र तथा पँचदशी बीज-मन्त्र 'महाराज्ञी–ध्यान' और अन्य उपयोगी मानचित्रों को सलंग्न करके प्रस्तुत माहात्म्य की उपादेयता में बढ़ोत्तरी करने का प्रयत्न किया गया है; हमें पूर्ण विश्वास है कि इस सहायक सामग्री से यथोचित लाभ उठाकर भक्त–समुदाय महाराज्ञी आदि-शक्ति के वास्तविक स्वरुप को हृदयंगम करके महामाया की असीम कृपा के सुयोग्य पात्र बनने का अधिकार पासकेंगे। नितान्त भौतिक जीवन की इस मृगतष्णा में देवी का आशीर्वाद ही हम सब का अमोघ संबल है।

× × ×

प्रस्तुत भूमिका का श्रीगणेश हम ने कश्मीर की पावनता को थोड़ा बहुत मुखर करने से किया है; अब संगत यही जान पड़ता है कि इस सन्दर्भ में नीलमतपुराण की इस सारगभित साक्षीद्वारा इस का समापन किया जाये :-

---

46) माता शारिका का ध्यान'

तत्र नागा ह्रदाः पुण्यास्तत्र पुण्याः शिलोच्चयाः ।
तत्र नद्यास्तथा पुण्याः पुण्यान्यपि सरांसिच ।
देवालयाः सुपुण्याश्च तेषां चैव तथाश्रमाः ।।
तन्मध्येन च निर्याता सीमन्तमिव कुर्वती ।
वितस्ता परमा देवी साक्षाद्धिमनगोद्भवा ।।[47]

"वहाँ उस कश्मीर में नाग, जौहड़ तथा पर्वत सब के सब परिपूर्ण रुप से पवित्र है; वहाँ की नदियों और सर पावनकारी हैं, वैसे ही देवालय और आश्रम सुपुण्यदायक हैं; इन के बीच में से बहने वाली देवी-स्वरुपा, हिमालय से प्रसूत वितस्ता इस कश्मीर प्रदेश को स्त्री की माँग के समान दो भागों में विभक्त करती है।"

कल्हण पण्डित ने भी इसी स्वर से स्वर मिला कर कश्मीर की महिमा को यह वाणी प्रदान की है:-

"तिलांशोपि न यत्रास्ति पृथव्यास्तीर्थैं बहिष्कृतः ।।"[48]

"जहाँ कश्मीर की धरती का तिलांश–मात्र भी तीर्थ की पावनता से समलंकृत है ।।"

'सर्वे भवन्तु सुखिनः': ।।

क० न० द०

---

47) श्लोक 43-45, 48) राजतरङ्गणी-I, 138,

श्री महाराज्ञी स्तुतिः

१. याद्वादशार्क परिमण्डित मूर्तिरेका
सिंहासनस्थिति मती सुरगैः वृतां च ।
देवी मनक्षगतिमीश्वरतां प्रपन्नां
तां नौमि भर्गवपुषीं परमार्थराज्ञीम् ॥

२. उद्यद्दिवाकरसहस्ररुचिं त्रिनेत्रां
सिंहासनोपरिगतामुरगोपवीताम् ।
खड्गाम्बुजाढ्य कलशाममृतपात्रहस्तां
राज्ञीं भजामि विकसद्वदनारविन्दाम् ॥

३. यत्पाद पङ्कजतलेऽमरमूर्धमौलि–
न्यस्तेन्द्र नीलमणिसन्ततयः पतन्ति ।
किञ्जल्क पानरत मुग्ध मधुव्रतस्त्वं
राज्ञी सदा भगवती जननीव नोऽव्यात् ॥

४. शीतांशु बालार्क कृशानु नेत्रां
चतुर्भुजामेन त्वदासनस्थाम् ।
शङ्खाब्ज शूलासिधरां महेशीं
राज्ञीं भजेऽहं तुहिनाद्रि रूपाम् ॥

५. देवि प्रसीद नत सौख्यकरे मृडानि
रुद्राणि रोगहरणे चतुरे प्रसीद ।
शर्वाणि सर्वजनपापहरे प्रसीद
राज्ञि प्रसीद गुणगौरि शिवे प्रसीद ॥

६. स्मृतैवान्तर्गतं पुसां हरन्ती सकलं मलम् ।

जयत्येषा महाराज्ञी भक्तानां कामदायिनी ॥

७. त्रिजगन्मोहिनि ईढ्ये मिहिरी भूत सद्गुणे ।

नमोस्तु ते महाराज्ञि पाहिमां शरणागतम् ॥

८. शेषाशेष मुखागण्यगुणे गुणगणप्रिये । नमोस्तुते ०॥

९. सुरासुरनरसिद्ध वन्दनीय पदाम्बुजे । नमोस्तुते ०॥

१०. चराचर जगत्सृस्टिस्थितिसंहार कारिणि । नमोस्तुते ०॥

११. भक्तकल्पलतेऽनल्प वाङ्माधुर्यजितामृते । नमोस्तुते ७॥

१२. ब्रह्मविष्णु महेशान वन्दिते गिरिनन्दिने । नमोस्तुते ०॥

१३. भक्तानां भीम संसार पारावार प्रतारिणि । नमोस्तुते ०॥

१४. निर्गुणे निष्क्रिये नित्ये सच्चिदानन्द रूपिणि । नमोस्तुते ०॥

१५. राज्ञीस्तोत्रमिदं पुण्यं त्रिसन्ध्यं प्रयतः पठेत् ।

असंशय मशेषेण वशयेदखिलं जगत् ॥

प्रकाशक :- श्री परमानन्द शोध संस्थान श्रीनगर (कश्मीर)

ॐ

श्री महाराज्ञी-प्रादुर्भाव-विवरणम्

(भृङ्गीश[1]-संहिता-तः)

श्री महाराज्ञी[2]-भगवत्यै नम:

महामाया जगन्माता श्री भगवती महाराज्ञी को नमस्कार हो ।

श्री भैरवी[3] उवाच :-

यामूर्ति-स्त्रिपुरा[4] देव्याद्वितीया[5] तरुणाभिधा[6] ।
उपासिता राक्षसेन[7] रावणेन महात्मना ॥१॥

(श्री भैरवी की जिज्ञासा) श्री भैरवी कहती है :- हे देवादिदेव महादेव ! संसार में प्रसिद्ध है, कि माता त्रिपुरादेवी (समय समय पर जो सात्विकी राजसी तथा तामसी रूप धारण करने वाली) त्रीन्-तीनों प्रकार की अभिलाषाओं (धर्म-अर्थ और काम को) पुरति - पुरतो ददाति - आगे आगे (इच्छा से पहिले ही देनेवाली,) तथा त्रिपुर - (भूः भुवः स्वः तीनों लोकों पर) अपना प्रभुत्व रखने वाली देवी त्रिपुर सुन्दरी है, इसकी जो दूसरी तरुणा राजसीरूपा मूर्ति है, महान् प्रभुत्व रखने वाले राक्षसों के राजा रावण इसी की नित्यप्रति उपासना करते थे ।

---

1) भृङ्गीश संहिता अब अप्राप्य है, कई कश्मीरी पंडितों के पास इस में से कुछ उद्धरण हस्तलिखित रूप में सुरक्षित हैं, प्रस्तुत प्रादुर्भाव-

ईशानकोणेलङ्कायां नागेऽनन्ते[8] प्रतिष्ठिता ।
तामसी[9] बहिरादिष्टा सा का वै वेदसत्तम ॥२॥

(उस रावण ने) अपनी राजधानी लंकापुरी के उत्तर-पूर्व के मध्य (ईशान-कोण) में स्थित एक नाग (जलकुण्ड) में जो अनन्त नागों (सर्पों) से आवृत था, जगन्माता की प्रतिष्ठा की थी। साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से कहिए कि बहिर्जगत में "तामसी" नाम से जिसे पुकारा जाता है, सब कुछ जानने वाले हे वेदवेत्ता ! वह वस्तुतः कौन है ।

विवरण इसी प्रकार का है, वितस्ता माहात्म्य तथा अमरेश्वर-यात्रा विवरण भी इसी रूप में विद्यमान हैं ।

2) १. रजोगुण समन्विता देवी - राज्ञी } महती च इयं
२. 'राजते' (स्त्री रूप।) इति राज्ञी } महाराज्ञी
३. महारानी - जगत् स्रष्टा महादेव की अर्धाङ्गिणी।
४. (रजोगुण समन्विता) राग-प्रेम की प्रतिमूर्ति, 'राज्ञी'
५. पश्चिम दिशा को 'राज्ञी' दिक् का भी नाम दिया गया है,
(शंकर - भाष्य)
(श्रीनगर से पश्चिम की ओर इस तीर्थ का विद्यमान होना इस अर्थ की पुष्टि करता है ।)

3) भैरवी—तन्त्र-परम्परा के अनुसार भैरव और भैरवी के संवाद द्वारा इस माहात्म्य का शुभारम्भ।
भैरव—भरण (सृष्टि) रमण (स्थिति) तथा वमन (संहार) का प्रतीक।
भैरव—सदाशिव का विश्वोत्तीर्ण रूप ।
भैरवी—इसी का विश्वमय रूप—आदिशक्ति ।

4) अ. कालिका पुराण में इसका वर्णन इस प्रकार है :-
क) त्रान् यस्मात् पुरतो दद्यात् दुर्गा - ध्याता - महेश्वरी।
त्रिपुरेति ततः ख्याता कामाख्या कामरूपिणी ॥

[10]तामसी राजसी वापि सात्विकी वा महेश्वर[11] ॥३॥

हे देवादिदेव ! कृपया मुझे बतलाये, यह कौन महान् सत्ता है ? वास्तव में यह सात्विकी रूपा है, राजसी-रूपा है या तामसी रूपा है ।

ख) वाग्भवं कामराजन्तु डामरञ्चेति तत् त्रयम् ।
सर्वधर्मार्थकामादिसाधनं कुण्डलीयुतम ॥

ग) त्रिकोणं मण्डलं चास्या स्त्रिपुरं तु त्रिरेखकम् ।
मन्त्रस्तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं तथा रूपं त्रयं पुन: ॥

घ) त्रिविधा कुण्डली शक्तिस्त्रिदेवानां च सृष्टये ।
सर्व त्रयं त्रयं यस्मात् तस्मात्तु त्रिपुरा मता ॥

ङ) त्रिपुरार्णव में:– ६ पृ०. श्लो० ८.
नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिङ्गला इडा ।
मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम् ॥
एवं तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरा मता ।

च) वामकेश्वर में :– ४पृ०, श्लो. ११–१२
त्रिपुरा त्रिविधा देवि ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी ।
ज्ञानशक्ति: क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये ॥
त्रैलोक्यं संसृजत्येषा त्रिपुरा परिकीर्त्यते ॥

छ) पञ्चस्तवी में :– प्रथम स्तव, श्लो० १६ :–
देवानां त्रितयं...............
तत्सर्वं त्रिपुरेतिनाम भगवत्यन्वेति ते तत्वत: ॥

ज) दुर्गासप्तशती में :–
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥

झ) विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरुपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥

सैव श्रुत्वा मया देव पुण्ये काश्मीर मण्डले ।
[12]भुवनेश समीपे तु विघ्ननाशार्थमास्थिता
कलौ सत्वात्मिका देवी वैष्णवी[13] देव दुर्लभा ॥४॥

हे देव ! इसी महामाया के सन्दर्भ में मैंने (आप्त पुरुषों से) सुन लिया है, कि इसी त्रिपुरसुन्दरी-राजसी रूपा-राजराज्ञी ने पवित्र काश्मीर मण्डल में उत्तुंग - 'हर मुकुट', पर्वत के समीपस्थ स्थल (तूलमूल - आश्रम में) अपने प्रिय भक्तों के हितार्थ तथा उनके विघ्नों (कष्टों) के नाश के लिए अपना निवास स्थापित किया है । (साथ ही यह भी निश्चित है) कि वास्तव में देवी ने कलियुग में ही जन-साधारण के लिए वैष्णवी सात्विक रूप धारण किया है । जो देवताओं के लिए भी बड़ा दुर्लभ है ।

(कलियुग की यही महत्ता है- अन्य युगों में जिन महान पर्वों का अभाव होता है, कलियुग में उन सब का भाव होता है ।)

---

5) मुनि मार्कण्डेय ने इसे "ब्रह्मचारिणी" नाम से अभिहित किया है ।
—दुर्गा सप्तशती ।

6) द्वितीयगुण – रजोगुण मानागया है (रजोगुणवती - राज्ञी) वस्तुत: स्वात्मनिर्भर महामाया, जिसे पति इत्यादि की अपेक्षा नहीं । रजोगुण समन्विता देवी का तरुणी होना स्वाभाविक ही है । 'तरुणी' का अर्थ कुवाँरी भी है । तभी रजोगुणवती राज्ञी (शुभनाम) प्रसिद्ध है ।
(देखिये ५ ऊपर)

7) देवजाति की प्रतिद्वन्दी राक्षस-जाति से सम्बद्ध अपने कुकर्मों से, अन्यथा रावण ब्रह्मा के मानस पुत्र पुलस्त्य का बेटा था, जन्म से ऋषि-सन्तान, ब्राह्मण ।

केन नीता कथं तत्र किं रूपा च प्रतिष्ठिता ।
वद सत्यं महादेव लोकानुग्रहकाम्यया ॥५॥

अब मुझ पर ही क्या, सर्व जनता पर अनुग्रह की (कामना) से हे नाथ! इस राजरानी को किसने और कैसे वहां उस पुण्यक्षेत्र (तूलमूला स्थान) पर लाया, तथा कौनसा अभूत-पूर्व रूप धारण कर यह यहां प्रतिष्ठित हुई है, कृपया हे देव शिरोमणि! सत्य एवं सविस्तृत वर्णन करने से कृतार्थ करें।

---

8) अथवा जिस कुण्ड-विशेष का नाम अनन्त (नागपति) नाग था।

9) तामसी का अर्थ दुर्गा भी है (मेदिनी)
तामस का एक और अर्थ सर्प भी है, अतः सर्पाच्छन्ना (सांपों से घिरी हुई) इति तामसी।
तमोगुण से युक्त देवी का वह रूप, जिसको वह प्रलय के समय धारण करती है।

10) प्रस्तुत अर्ध-श्लोक में पुनः भैरवी अपनी शङ्का दूर करने हेतु पूछती है, कि तीन जन्मसिद्ध गुणों में से उस देवी में किस विशेष गुण का प्राधान्य है।

11) महेश्वर का अर्थ तन्त्र परिपाटी के अनुसार स्वात्म-निर्भर महासत्ता माना गया है, जो देश काल के बन्धनों से ऊपर है।

12) काश्मीर के प्राचीन ग्रन्थों में "भुवनेश" को 'हरमुकुट' पर्वत के अर्थ में ही लिया गया है। (हरचरित्र चिन्तामणि, इत्यादि)

13) "भवानीनामविलास" के आधार पर इसे "परापरा" की संज्ञा दी गई है।

14) स्पष्ट है कि महाराज्ञी का देवी-स्वरूप काश्मीर मूलक नहीं, जब कि देवी का शारिका रूप ही कश्मीर की प्राचीन सनातन परम्परा से सम्बद्ध है।

श्री भैरवः —

श्री भैरव श्री भैरवी की जिज्ञासा का समाधान करते हुए अब इस प्रकार उत्तर देते हैं :-

श्रृणु सुन्दरि वक्ष्येहं तरुण्याश्चरितं महत् ।
येन श्रवण मात्रेण जनः सर्वज्ञतामियात्[15] ॥६॥

हे प्रिये ! आप निश्चिन्त रहिए, मैं महामाया श्री त्रिपुर सुन्दरी के तरुणी (राजसी राजरानी) का आद्योपान्त सम्पूर्ण चरित्र वर्णन करूंगा, निश्चय रखिये, इस विवरण के श्रवण-मात्र से ही लोग 'सर्वज्ञता' (भूत, भविष्यत् के ज्ञान) को प्राप्त कर चुके हैं ।

पुरा पुलस्ति[16] तनयो रावणो नाम राक्षसः ।
सुतोऽभूत्तमसा[17] पूर्णो मदमान समन्वितः ॥७॥

चिर काल की बात है, पुलस्ति महर्षि का पुत्र रावण राक्षस-प्रकृति से सम्पन्न था, उस महर्षि का यह पुत्र अज्ञान से पूर्ण था, और इसी अज्ञान की मस्ती (घमण्ड) में चूर था ।

---

15 'सर्वज्ञ' का पर्याय 'शिव' तथा दुर्गा भी है ।
अतः इस श्लोक से यह ध्वनि भी निकल सकती है, कि प्रस्तुत विवरण की साधना द्वारा 'पशु, पति-पदवी भी प्राप्त कर सकता है ।

16) पुलस्ति अथवा पुलस्त्य इस कारण भी उस का नाम पड़ा होगा, क्योंकि वह अन्य ऋषियों की तरह जटाधारी न होकर अपने केशों को समतल रखा करता था ।

17) 'तमसा वर्णो' भी अन्य पाठ है—कृष्ण वर्ण का, अथवा आर्यों के श्वेत-वर्ण से वञ्चित, अनार्य, ऋषि-सन्तान होकर भी ।

दशायुतानि वर्षाणि चचार दुश्चरं तपः ।
निराहारो यतप्राणः पादैकाङ्गुष्ठ[18] संस्थितिः ॥८॥

परं महर्षि पुत्र होने के नाते इसने (दशायुत) एक लाख वर्ष तक अपने प्राणों को वश में रखकर, बिना कुछ खाये, एक पाऊं के अंगूठे के सहारे स्थिर होकर कठोर घोर तपस्या साध ली थी।

ईश्वराराधनं[19] कुर्वंस्तन्मना विजितेन्द्रियः ।
एकदा चरतस्तस्य दुश्चरं तप ईश्वरि ॥९॥

हे देवी! एक दिन महर्षि पुत्र 'रावण' जबकि अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने वश में रखकर साधारण मनुष्यों के लिए-दुष्कर, अतएव कठोर तपस्या द्वारा ईश्वर की आराधना में तल्लीन (तपस्या मग्न) था।

लुब्धको चर यूथं च सिंह वाराह यूथकम् ।
शीघ्रगं चानुदुद्राव धनुष्पाणिर्महेश्वरि ॥१०॥

तो, हे महेश्वरि ! अचानक शिकारियों का एक बड़ा दल जो अपने हाथों में धनुषबाण (तीर-कमान) लिये हुए था, शेरों तथा सुअरों की टोलियों का बड़ी तेज़ी से पीछा कर रहा था।

त्रस्तास्ते प्राणिनस्तत्र रावणाश्रममन्ततः ।
क्षोभयन्तः परंजग्मुर्नभृतालुब्धकेषुभिः ॥११॥

---

18) यहां पर हठयोग के प्रति इशारा है ।

19) आ+राधा का अर्थ यह भी हो सकता है, कि वह इस कठोर तपस्या में सफलता के समीप था ।

भय के मारे वे सब के सब वन्य पशु जो शिकारियों के तीक्ष्ण बाणों की तेज धारों के आघात से मर न पाये, बहुत दुःखी होकर, रावण के इसी आश्रम में, विवश हो, प्रविष्ट हुए।

क्षुब्धं तमाश्रमं दृष्ट्वा रावणः सात्विकोऽपि सन्।

जजाप जप्यं[20] विमनः परमं तम-[21]आश्रितः ॥१२॥

निरीह पशुओं के आश्रम में प्रविष्ट होने से स्वतः-सिद्ध आश्रम में भगधड़ मच गई, यह देखकर रावण यद्यपि सात्विकी प्रकृति को प्राप्त हुआ था, तपस्या में बाधा पड़ने से बहुत क्रोधी हुआ निदान विमन (बेदिल) होने पर भी यथासाधित जप करने लगा।

एतान्वै लुब्धकान्सर्वान्प्राणिनोपि च सर्वतः।

एकेषुणा पातयेय इति ध्यानास्पदो[22] स्मरन् ॥१३॥

ध्यानवस्था में होकर भी वह इन सब शिकारियों और वन्य जीवों को एक ही बाण से समाप्त कर दूं :-
इस प्रकार सोचते हुए ...

देवदेवं महादेवं विरूपाक्षं[23] त्रिलोचनम्।

ध्यात्वा परम संविन्म[24]स्तमोरूपं ददर्श सः ॥१४॥

---

20) वह विशेष मन्त्र, जिस का वह जप कर रहा था।
21) क्रोध, अविमर्श, इत्यादि।
22) शैव-दर्शन के अनुसार योग का प्रथम सोपान।
23) जिन आंखों की वास्तविक सौम्यता नष्ट हो गई थी। भयदायक रूप।
24) संवित्, शैव दर्शन के अनुसार आत्म-चैतन्य का द्योतक है।

देवों के सिरमौर महादेव शिव का ध्यान करके उस रावण ने अपने आत्म - चैतन्य द्वारा विकराल, त्रिनेत्रधारी शिव के प्रलयंकारी रूप के दर्शन किये ।

ततस्तं तामसं[25] रूपं दर्शयामास सुन्दरि ।
दृष्ट्वा तु तामसं रूपं स्तुत्वा नुत्वा च भक्तितः ॥१५॥

हे देवि ! तब उस (रावण) ने उस तामस रूप धारी अघोरी भगवान के दर्शन किये, तो अन्त में अघोरी भगवान के दर्शन से संतृप्त होकर उसने परिपूर्ण भक्ति भाव से ओत प्रोत हो, भगवान शंकर का साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और उस की यथावत् स्तुति की ।

वरं वृणीष्वीति वदंस्त्रैलोक्यं वृतवान् प्रभो ।
ततो देवेन चाज्ञप्तो भज शक्तिं[26] च राक्षस ॥१६॥

देवादिदेव महादेव शंकर 'शरणागत-वत्सल हैं आशुतोष हैं' यह उन का स्वयं कथन है, यही कारण है भक्त-वत्सल श्री अघोरी नाथ भक्त रावण की भक्ति भाव से, पूर्ण-स्तुति तथा साष्टाङ्ग चरण वन्दना से उस पर सन्तुष्ट हुए, और प्रेमभाव से बोले, "पुत्र रावण मांगो, मांगो, क्या चाहते हो वर मांगो । (रावण अभी फूले नहीं समाता था, अभी सोच ही रहा था) कि भगवान आशुतोष फिर उस से बोले ओ-रे राक्षस? सुनो सर्व-प्रथम तुम एक मात्र मेरी अघोरी महामाया, शक्ति (देवी) की अर्चना करो, उसी का भजन करो ।

25) महादेव ने अपना विकराल रूप ही रावण को दिखाया, अपना शिव-सौम्य रूप कदापि नहीं ।

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते ००००" (गीता जी)

तामसीं[27] त्रिगुणातीतां देवी श्यामात्मिकां पराम् ।

तरुणी मम या शक्तिः महा पञ्चदशी[28] परा ॥१७॥

रावण ! सुनो मेरी शक्ति तामसी रूपा महामाया त्रिगुणातीता—सत्व-रजस् और तम, इन तीन गुणों से अतीता, परे है। अतः श्यामा-स्वरूपा—अघोर रूपा, तरुणावस्था में प्रस्फुटित सर्वोत्कृष्टा तथा पञ्चदशाक्षरा (१५ अक्षरों) से परे द्वाविंशत्यक्षरा[29] (२२ अक्षरों वाली) है।

रजः तमः स्वरूपा सा भज तामेव रावण ।

---

26) वायुपुराण के अनुसार रुद्र-शक्तियों में वर्ण (रंग) के आधार पर भेद किया गया है। यथा—श्वेतकी लक्ष्मी, सरस्वती इत्यादि।
कृष्ण वर्ण :- दुर्गा, काली इत्यादि। शक्ति के इन्हीं तामसी रूपों की आराधना स्पष्ट कारणों से रावण के उपयुक्त थी।

27) काली रूपा दुर्गा— (दुर्गा सप्तशती) :—

क) भीमां भीमोग्र दंष्ट्राञ्जनगिरिविलसत्तुल्यकान्तिं दशास्यां
त्रिशंल्लोलाक्षिमालां दश लुलित भुजां पंक्ति पादाँस्तथैव ।
शूलं बाणं गदां वै धनुरथ दधतीं शंखचक्रे भुशण्डीं
वन्दे कालीं कराग्रै परिघमसि युत तामंसीं-शीर्षकञ्च ।।

ख) या देवी निष्कला राज्ञी भगवत्यमलेश्वरी ।
सा सृजत्यवति व्यक्तं संहरिष्यति 'तामसी' ।।

ग) 'भवानीनामविलास, में श्यामा को काली का पर्याय माना गया है (पृ० १५३)

28) पञ्चादशी मन्त्र :-

ॐ	ह्रीं	श्रीं	रां	क्लीं	सौ	भगवत्यै	राज्ञै	ह्रीं	स्वाहा
1	2	3	4	5	6	7-10	11-12	13	14-15

29) द्वाविंशत्यक्षरामन्त्र :-

क्रीं	क्रीं	क्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	दक्षिणी	कालिके
1	2	3	4	5	6	7	8 9 10	11 12 13

ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	क्रीं	क्रीं	क्रीं	स्वाहा।
14	15	16	17	18	19	20	21 22

समय समय पर सात्विकमयी होती हुई भी जो राजसी और तामसी का रूप धारण करती है, रावण, उन्ही शक्ति (तामसी) का तुम भजन करो ।

यतो मद् ध्यान निष्ठा वै प्राणि हिंसन तत्परः ॥१८॥
त्रैलोक्यं व्रतवान् सद्यस्ततस्तामेव चाश्रय ।
आश्रिता हि महादेवी सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥१६॥

रावण ! तुम्हे याद होगा, जिस समय तुम एकनिष्ठ हो, मेरे ध्यान में तन मन से संलग्न थे, दूसरी ओर अन्य प्राणियों (शिकारियों तथा पशुओं) की हिंसा की तामसिक प्रवृत्ति की चाह तुम्हें भी थी, चूंकि मैं भी सांसारिक गतिविधि के अनुसार त्रिलोकी में 'शरणागत-वात्सल्य' का कृत-प्रतिज्ञ हूँ, (अतः तुम्हें दर्शन-देना और सद्-वृति का उपदेश करना मेरा शुभ व्रत है) इस कारण तुम्हारे-लिए यही निर्देश है कि तुम अपनी तमोमयी प्रवृत्ति की अधिष्टातृ-देवी अघोरी तामसी शक्ति का आश्रय लो, अनयमनस्क होकर इसी का आश्रय लेने से महादेवी तामसी तेरी सारी कामनायें पूर्ण करेगी ।

इत्युक्तो देवदेवेन चेश्वरेण महात्मना ।
जजाप तामसीं[30] देवीं तरुणादित्य वर्चसाम् ॥२०॥
वर्षायुतं महादेवी तद्दर्शनमुपागता ।

इस प्रकार देवादिदेव महादेव द्वारा दर्शाये मार्ग पर रावण विधिविधान मध्याह्नकालीन सूर्य के समान अत्युग्र तेजोवती

तामसी रूपा श्यामा का जाप निरन्तर करने लगा। यहां तक कि एक अयुत वर्ष (दस हजार वर्ष का समय) बीतगया, परन्तु रावण इतनी दीर्घ अवधि तक अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा से ज़राभर भी विचलित नहीं हुआ, यहीं कारण था कि तदनन्तर महादेवी उस के दर्शनार्थ उपस्थित हुई।

वरं वृणीष्व पुत्रेति स्कन्दस्यापि[31] सुदुर्लभम् ॥२१॥
ददामि ते त्रिलोक्याश्च भुंक्ष्व राज्यमकण्टकम्।
त्रियुगं भोगसहितस्ततोऽस्मत्पार्श्वदो भव ॥२२॥

पुत्र ! बस में अब तेरी इस घोर तपस्या से अति सन्तुष्ट हो गई हूं। इसी कारण आज में तुमको यह अभीष्ट वर 'प्रिय पुत्र स्कन्द (कुमार) के लिए भी जिसका पाना दुर्लभ है, स्वेच्छा से प्रदान करती हूं, जिसके महान् प्रभाव और प्रताप से तुम एकच्छत्र तथा अकण्टक राज्य (जिस राज्य में तेरा कोई भी प्रतिद्वन्दी न हो) का उपभोग करोगे। विश्वास रखो इसकी अवधि पूरे तीन युगों की समाप्ति तक रहेगी। तदनन्तर तुम मेरा ही पार्श्वद बनोगे।

अन्यदपि च ते पुत्र देवानामपि दुर्लभम्।
ददामि खलु याचस्व यत्तेमनसि वाञ्छितम् ॥२३॥

---

30) आदिशक्ति का तामसी रूप - कृष्णवर्णा काली, दुर्गा।

31) तन्त्रों में पार्वतीतनय स्कन्द (कुमार) का ही उल्लेख अधिक मिलता है— "स्कन्दस्यापि च यद्गोप्यं रहस्यं कथयामि तत्" (भवानी सहस्रनाम) दुर्गा को भी स्कन्दमातृ नाम से पुकारा गया है (स्कन्द पुराण)

जगज्जननी महामाया रावण के कठोर व्रत पर और अधिक सन्तुष्ट होकर रावण से फिर बोली :-

प्रिय पुत्र रावण ! तेरे तपोबल से अत्यन्त सन्तुष्ट हुई मैं तुम्हे और अधिक कुच्छ 'जो बड़े बड़े देवताओं से प्राप्त करना अति दुर्लभ है, देना चाहती हूं', इसलिए, मांगो मांगो, जो भी तेरी मनोकामना है।

इत्येवमुक्तो देवेश्या रावणो राक्षसोत्तमः।
उवाच श्लक्ष्णं मधुरं भवानीं[30] भय हारिणीम्॥२४॥

जगन्माता देवी के ऐसा कहे जाने पर राक्षसों में श्रेष्ठ रावण ने भय दूर करने वाली भवानी से ये मिठास भरे वचन कहे :-

यदि तेस्यान्महादेवि महान्मयि त्वनुग्रहः।
तदा त्वं मद्गृहेसंस्था नित्यं सन्निहिताभव॥२५॥

हे जगन्माता महादेवी यदि इस प्रकार की महान् दया की दृष्टि आपकी मुझ पर विलसित है, तो अनुग्रह कीजिये, आप अपना निवास मेरे घर (लंका) में डाल दीजिये, ताकि मैं आप का सान्निध्य सदा पाता रहूं। आप सदा मेरे सम्मुख ही रहा करोगी।

इत्येवमुक्ता सादेवी राक्षसेन महात्मना।
परितुष्टेन मनसा तत्र वासममन्यत॥२६॥

भव - शिव, भवानी - शिवपत्नी अथवा शक्ति।

महामना राक्षस से ऐसी विनति किये जाने पर प्रसन्नचित्ता उस देवी ने वहां (लंका में) रहना मान लिया ।

महा संकर्षणी ज्वाला ह्यनन्तो भुवि संस्थिता ।
पाशाङ्कुशधनुर्वाणैश्चतुर्भिरायुधैर्युता ॥२७॥
त्रिनेत्रा तामसी शक्तिर्महासिंहोपरिस्थिता ।
श्यामा नामा तदाकारा लंकेशान दिशि स्थिता ॥२८

(महामाया जगन्माता लंका में किस वेशभूषा और रूप में तथा किस स्थान पर ठहर गई, इसीका यह निर्देश है)

लंका—जो उस समय एक राक्षस-पुरी थी, उसी की उत्तर पूर्व दिशा के मध्य ईशान कोने में वर्तमान एक कुण्ड, अनन्त नागों (अनेक जल-सर्पों) से जो आवृत था, उन्हीं जलव्यालों के आसन पर महाप्रचण्ड शेर पर सवार, त्रिनेत्रा–(वह्नित्रयार्क रजनीश) अर्थात् सूर्य-चन्द्रमा और अग्नि स्वरूप तीन नेत्रों वाली, चतुर्भुजा चार भुजाओं वाली (पाश-अङ्कुश-धनुष तथा बाण) चार आयुधों को चार भुजाओं में धारण करने वाली, जाज्वल्यमान ज्वालाओं से ओत-प्रोत महा संकर्षणी महामाया 'तामसी' रूप से विराजित "श्यामा" नाम से वहीं रहने लगी । अन्त में सारी राक्षस पुरी इसी 'श्यामा' नाम से विख्यात हुई ।

राक्षसोपासिता भक्त्या महिष्यैः मधुमानुष्यैः ।
एवं श्यामा परादेवी[31] राक्षसैस्समुपाश्रिता ॥२९॥

यह निश्चित है सबकी प्रकृति अपनी अपनी होती है। राक्षसों की भी प्रकृति राक्षसी है, इसी आधार पर राक्षसों ने कितनी भी उपासना भगवती की लंकापुरी में क्यों न कर ली, परं अपनी वृत्ति के अनुसार ही, राक्षस-रावण द्वारा परम भक्ति से परादेवी श्यामा की उपासना भैंसों, मदिरा तथा नरबलि देकर की; अन्य राक्षसों द्वारा भी यही पूजा-पद्धति अपनाई गई।

तामसो सातु तरुणी त्रिपुरायाः पराकला[32]।
अन्ते राक्षस कर्मणा परां घृणामभजत ॥३०॥

इस प्रकार 'भूः, भुवः, स्वः' तीनों लोकों पर अपना प्रभुत्व रखने वाली धर्म-अर्थ और काम, तीनों अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली, समय समय पर सात्विक-राजसिक तथा तामसिक मूर्ति धारण करने वाली देवी त्रिपुरा,-त्रिपुर सुन्दरी सर्वोत्कृष्ट-कला तरुणी रूपा महामाया चिरकाल तक राक्षस पुरी में ठहरी। परन्तु अन्त में राक्षसों के कुकृत्यों से उनके प्रति उस में घृणा पैदा हुई।

यदा तदपराधैः साचोद्विग्ना तद् गृहस्थिता।
सतीदेशं समायातुं कृतव्रता सुनिश्चला ॥३१॥

---

31) देवी का परारूप 'मारण-हनन' भी माना गया है।
(गणरत्न महोदधिः)

32) कला का अर्थ हवन के सन्दर्भ में मन्त्र, द्रव्य और श्रद्धा भी माना गया।
(नीलकण्ठ विरचित महाभारत भाष्य XIV, 891)

जब राक्षसों के जघन्य पापों से लङ्का में ठहरी हुई वह देवी उद्विग्न हो उठी, तब उसने सुनिश्चित रूप से कश्मीर मण्डल में पधारने की ठान ली।

तदायाता सती देशं[33] रामराज्य प्रदायिनी[34]।
महाराज्ञीति विख्याता भुवनेशमुपाश्रिता ॥३२॥

रामराज्य जैसे वातावरण को जन्म देने वाली देवी तब काश्मीर में आकर हरमुकुट पर्वत के समीप 'महाराज्ञी' नाम से प्रसिद्ध हुई।

(श्री श्यामा जी लंकापुरी से किस उपस्कार तथा परिपाटी से सती देश (काश्मीर) में प्रादुर्भूत हुई, उस सम्पूर्ण यात्रा का इस प्रकार वर्णन है)

नीता हनुमता देवी नागानन्तोपरिस्थिता।
षष्टयुत्तरैर्नागशतैस्त्रिभिः सा परिवारिता ॥३३॥

(श्री श्यामा जी लंकापुरी से विदा होने के समय वहां से केवल एकाकिनी नही आई, प्रत्युत अपने साथ उन सब जल-व्यालों जिनके आसन पर वह लंकापुरी के अनन्त सांपों वाले कुण्ड में रहती थी, जिनमें विशेष नागों की संख्या ३६० थी,

---

33) सती देश - कश्मीर, सतीसर इसका प्राचीनतम नाम
"यैवोमा सैव कश्मीरा" (नीलमत पुराण 293)
उमा और सती (शिव-पत्नी) समानार्थक है ॥

34) देवी का शुभागमन कश्मीर के लिए अत्यन्त शुभ शकुन था, क्योंकि वह रामराज्य जैसे न्याय-संगत वातावरण को जन्म देने वाली है ॥

उन सब विशेष अविशेष सर्पों से उपर-नीचे घिरी हुई, श्री राम-चन्द्रजी के प्रियदूत महाबली हनुमान जी के विशाल कन्धों पर सविस्तृत आसन पर आसीन हो, उन्ही वायुपुत्र द्वारा कश्मीर देश में चली आई।

अर्थात् अनन्तनागों वाले आसन पर आसीन वह देवी जो ३६० सर्पों से घिरी हुई थी हनुमान द्वारा कश्मीर लाई गई।

(काश्मीर मण्डल में प्रवेश करने पर जगन्माता श्री महा-राज्ञी की यात्रा किस मान-दंड़ से तथा किस किस ओर एवं किस प्रकार हुई, इसका सविस्तृत वर्णन इस प्रकार वर्णित है)

पाञ्चालाद्रिंसमुत्क्रम्य[36] कपालमूल[37] सन्निधौ।
वियत् विष्णुपदोपत्य[38] कायां प्रस्तर खण्डिके ॥३४॥
मध्यग्रामान्तरे[39] भूमौ-स्थित्वाच पुनरुत्थिता।
ततः विष्णुगंगातीरे[40] सानुमतीं दिवस्थलीम्[41] ॥३५॥
प्रच्छन्नवन वर्तिनीं खल्वारणीं[42] मनोहराम्।
जलहीनां विलोक्य तां प्रस्थिता चोत्तरा दिशाम् ॥३६॥

सर्वप्रथम पांचाल पर्वत माला को पार करके 'कपालमोचन' (तीर्थ) के निकट नोकदार पत्थरों के टुकड़ों से व्याप्त 'विष्णुपाद' नामक पवित्र तीर्थ पर पहुंची, वहां 'मध्यग्राम की धरती पर उतरी, तब फिर उठकर 'विष्णुगंगा के तट पर पर्वतीय 'दिवस्थली' को पार कर वह देवी घने जगंल में विद्यमान मनोहर 'खल्वार-णी' पहुँची, परन्तु इसे भी जलहीन देखकर फिर उत्तर की ओर आगे चली।

विस्तृत - विवरण यथा :-

सर्वप्रथम महाबली वायुपुत्र के वायुयान-समान सुखासीन स्कन्ध
पर समासीना महाराज्ञी ने पाञ्चालाद्रि (पीर पंचाल नामक
विशाल तथा अत्युन्नत पर्वत को पार किया। यह वही पर्व
श्रेणी है, जहां से कश्मीर की वादी प्रारम्भ होती है। इसी पर्व
श्रेणी के शिखरस्थ अत्युन्नत स्थान पर अनादि काल से वर्तमा
'विष्णुपाद' नामक एक पवित्र स्थान है, जो पाऊं की आकृ
का एक विशाल और महान् सरोवर है। इसी की तलह
में 'मध्यग्राम,-(मंज़गोम) नामक एक विशाल स्थल है, जिस
समीप ही "कपाल मोचन" नामक एक प्राचीन मुक्तिधाम है
इसी मध्यग्राम वर्तमान् 'मंजगोम' प्रान्त पर भगवती ने पहिल
डेरा जमाया था, चूंकि यह पर्वत की तलहटी है, नोकदा
पत्थरों के टुकडों से सारा प्रान्त आवृत है, सम्भव है, इस
जो अपने साथ जल-सर्प लाये थे, कहीं उनके लिए यह स्था
उपयोगी नही हो,इसी कारण यहां से पुनः आगे के लिए प्रस्थ
कर लिया हो। प्रयाण करते करते इसने मार्ग में इसी विष्णुपा
निकली गंगा - विष्णुगंगा (वेशव-नदी) जो बराबर विष्णुपा
(कोंसरनाग) तदनन्तर जल-प्रपात (अहरबल) से बहती हु
देवी कुलवागीश्वरी के प्राचीन पवित्र स्थान वर्तमान (कुलगा
को पार कर आगे दिवस्थली (दिवसर) के मध्य में प्रचण्ड-रू
से बहती है, इसी विष्णुगंगा (वेशवनदी) के किनारे पर स्थि
इसी 'दिवसर' ग्राम के करेवा पर 'खल्वारणी' वर्तमान खनबर
नामक एक मनोहर स्थान है, जो चारों ओर घने और ऊंचे

तत्र मार्तण्ड पूर्वेंसा लघुपुरे स्वनूपगे।
दृष्टिं कृत्वा पुनर्याता श्रान्ता ह्यनन्तनागतः॥३७॥

छाया वृक्षों से आवृत एक सुन्दर अरण्य (वन) सा था। सुशोभित होने के कारण इसी को दूसरा विश्राम-स्थान नियत किया गया, परन्तु इस स्थान को भी जलहीन ही पाया। वास्तव में करेवा जलहीन तथा नीरस (खुश्क) होते हैं। जलाभाव के कारण जल-व्यालों का रहना यहां भी सम्भव नहीं था, अनुमान है, यही कारण होगा, भगवती ने यहां से भी आगे के लिए प्रस्थान किया। अब उनका प्रयाण आगे उत्तर दिशा की ओर हुआ।

---

35) षट्कोण अथवा षट्चक्र का प्रतीक

180 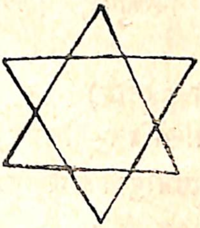 180

दो तिकोनों के ज़ावियों की संख्या का जोड़ = 360

36) प्रस्तुत श्लोक में आदिदेवी का वह मार्ग दिखाया गया है, जिसके द्वारा वह कश्मीर में प्रविष्ट हुई, यहां पर यह बात उल्लेखनीय है, कि माहात्म्य-कार कश्मीर-मण्डल की सीमा तक आने पर ही देवी का यह मार्ग अंकित करता है। लङ्का से पीर-पंचाल तक की यात्रा के प्रति वह मौन है।

पाँचाल (कश्मीरी पांचाल) :-

महाराज्ञी ने वास्तव में पांचाल पर्वत माला के उस द्रंग को पार करके घाटी में प्रवेश किया, जिसे 'पांचाल धारा' का नाम दिया गया।

(क्षेमेन्द्र, कल्हण - इत्यादि)

इसी की तलहटी में शूरपुर (हुरपुर-काश्मीरी) शुपियां की ओर जाने का मुख्य द्वार है, और इसी मार्ग से देवी राज्ञी भी

अनन्त नागैः संवृत्ता हनुमत्ता शिरोधृता ।
देवी भगवती राज्ञी भ्रान्ता सर्वत्र मण्डले ॥३८॥

कश्मीर में प्रविष्ट हुई। मुगलों ने इसी मार्ग को १६वीं–१७वी शताब्दी में कश्मीर में आने-जाने के लिए राजपथ बनाया, आज कल इसे "मुगलरोड़" कहा जाता है।

37) कपालमोचन तीर्थ :–
('कल्हण' "हर-चरित्र-चिन्तामणि", इत्यादि में उल्लिखित)
इस तीर्थ का एक महात्म्य भी प्राप्य है।
'देगाम, नामक ग्राम के अन्तर्गत यह तीर्थ शुपियां से पश्चिम की ओर लगभग डेढ़ मील की दूरी पर है।

38) विष्णुपाद—क्रमसर :- (नीलमत्, राजतरङ्गिणी-इत्यादि)
कश्मीरी में इसे - 'कौंसर-नाग कहते है, 'क्रमसर' भी।
माहात्म्य में इसे 'विष्णुपद, 'विष्णुक्रम' अथवा 'विष्णुपाद' की संज्ञा दी गई है।

39) मध्यग्राम (काश्मीरी-मंज़गोम)
अहरबल-प्रपात (आर्खोबिल–नीलमत्) तथा शुपियां के बीच विद्यमान; यहां पर एक मनोमुग्धकारी नाग भी है, जो देवी महाराज्ञी के नाम से अभिहित है।

40) विष्णुगंगा—विष्णुपाद-कौंसरनाग से निस्सृत विशोका नदी, (वेशव–काश्मीरी भाषा में)

41) दिबस्थली–आधुनिक "दिवसर" (काश्मीरी)।
विशोका नदी (वेशव) के दक्षिण-पूर्व की ओर।

42) खल्वारणी (काश्मीरी–खन–मरञ्य) विशोका नदी की दाईं ओर उड्डर पर, दिवसर परगना के अन्तर्गत।

देवी का प्रवेश मार्ग :–

१) पीर पांचाल द्रंग,	५) दिवसर,
२) कौंसर नाग,	६) खनभरञ्य,
३) कपाल मोचन (शुपियां)	७) लोकटिपोर,
४) मंजगोम,	८) अनन्त नाग।

नोट :– अगले क्रम के लिए अगला श्लोक देखिये :–

अब उत्तर की ओर प्रयाण करते करते वह मार्तण्ड (वर्तमान मट्टन) तीर्थ के पूर्व की ओर उसके निकट ही एक छोटे से गांव में पहुंच गई। गांव का नाम लघुपुर (वर्तमान-लोकुट-पोर) है।

लोकुटपोर (लघुपुर) ऋृषिधाम (वर्तमान ऐशमुकाम) की तलहटी में स्थित पहाड़ के दामन में और कुछ दलदल के रूप में एक तंग और विषम स्थल है। सम्भव है, इसी कारण इसकी ओर विशेष ध्यान न देकर विशेपतया हनुमान के स्कन्धों पर बैठने से थकी-मांदी माता राज्ञी यहां से पुनः वापिस अनन्तनाग की ओर आई। निदान इस स्थान को भी उपयुक्त न मानकर वायुपुत्र-हनुमान द्वारा अपने विशाल सिर पर उठाई हुई, ऊपर नीचे अनन्त जलव्यालों से घिरी हुई देवी महाराज्ञी भगवती प्रायः सारे कश्मीर मण्डल का भ्रमण करती रही।

क्वचिल्लोक[43]पुरारामे क्वचिद्रायस्थले[44] शुभे।
क्वचिद्वादि[45]पुरे ग्रामे कोटीतीर्थे[46] जले क्वचित् ॥३९॥
क्वचिच्चण्डपुराध्यक्ते[47] क्वचिद् टंककरे[48] तथा।
एवं भ्रान्त्वा शारदातः[49] सतीदेशं प्रत्यागता ॥४०॥

---

43 महाराजा ललितादित्य से बसाया गया यह उपनगर कल्हण के समय में "लोक पुण्य" कहलाता था।

44) रायस्थल—(काश्मीरी 'रायथन' बड़गाम तहसील में।

45) बादीपुर—(काश्मीरी "बाद्यपूर" चाडूरा तहसील में।

46) कोटितीर्थ--(वाराह क्षेत्र) बारामूला में।

इस प्रकार कभी वह "लोकपुर" (वर्तमान-लोक-भवन) के मनोहर बाग में, कभी वनवर्ति उत्तम स्थान रायस्थल (वर्तमान राईथन) के कल्याण-प्रद वन में, कभी 'वादिपुर' (वर्तमान-वादी पोर-ग्राम) के करेवा पर कभी 'कोटीतीर्थ' (वर्तमान-बारामूला) के पवित्र जल में, कभी सर्वोत्तम स्थान 'चण्डुपुर' (वर्तमान-चण्डिगोम-लोलाब घाटी में) और कभी 'टंककर-स्थल' (वर्तमान टूक्कर-ग्राम) में चली गई।

इस प्रकार कश्मीर मण्डल का प्रायः पूर्ण भ्रमण कर अन्त में 'शारदा' तन्नामक पर्वतीय स्थान से पुनः सतीदेश (कश्मीर-वादी) में वापिस आ गई।

अन्ते संगमसान्निध्ये[50] सिन्धुजल समावृतम्।
सर्वं प्रान्तं स जम्बालं फनीनां हितकारकम् ॥४१॥

---

47) चण्डुपुर—(काश्मीरी - "चण्डिगोम") लोलाब वादी में

48) टक्कर—(काश्मीरी - 'टिक्कर' हंदवाडा तहसील में, प्राचीन हिन्दूवाट

49 क) शारदा अथवा शारदी—प्राचीन नाम।

क्रम ॥ देवी का प्रवेश मार्ग :-

९. लूक भवन, १२. कोटि तीर्थ,
१० राय थन, १३. चण्डि गोम,
११ बादि पूर, १४. टिक्कर,
१५, शारदा से सीधे संगम के पार्श्व में।

49 ख) शारदा तीर्थ—'कृष्णगंगा, तथा 'मधुमती, नदियों के संगम पर ए पहाड़ी पर स्थित; प्राचीन काल से इस तीर्थ की महिमा गाई गई है आजकल यह क्षेत्र पाकिस्तान के अधीन है और कृष्ण-गंगा का नाम बद कर 'भीलम' रखा गया है।

वीक्ष्य फल प्रदानेन स्वोपयुक्तमिमं स्थलम् ।
प्रसन्न वदना देवी हनुमन्तमबोधयत् ॥४२॥

अन्त में महिमाशाली उस शुभ स्थान को जो चारों ओर पवित्र सिन्धु नदी के पावन जल से घिरा हुआ है अर्थात जिस के चारों ओर सिन्धु नदी बहती है, तथा वितस्ता और सिन्धु नदी के 'संगम' (वर्तमान-शादीपुर) के समीप स्थित है; (सिन्धु नदी के जल के चारों ओर प्रवाहित होने से जो स्थान सारे का सारा दलदल तथा कीचड़ वाला था, इसलिए जलव्यालों के लिए सर्वथा उपयुक्त मान कर) तथा अपने लिए भी यही स्थान सर्वभावेन एवं सर्व प्रकार से उपयुक्त और फलदायी जानकर जगन्माता देवी राज्ञी अत्यन्त प्रसन्न हुई, सर्वथा सन्तुष्ट होकर हनुमान् को यह समझा गई ।

भक्त प्रवर रामेष्ट-वायुसूनो महाबल ।
विरम क्षणमत्र त्वमलगर्दांश्च चोदय ॥४३॥
स्वैरं स्वैरं विसर्पन्त तूलवदत्र[51] पाङ्किले ।
वयं च विश्रमिष्यामः छायाद्रुमेषु भूतले ॥४४॥

---

50) संगम—कल्हण की साक्षी के अनुसार इस 'संगम का निर्माण "सुय्या" ने महाराजा अवन्तिवर्मन के राज्य-काल में किया था। आगे चलकर सुल्तानों के समय में इसका नाम "शहाबुदीन पुर" पड़ा, जिसका काश्मीरी रूप शादीपुर आजकल भी प्रचलित हैं। वितस्ता - माहात्म्य में इस संगम का नाम 'श्राद्धपुर' अथवा शारदापुर दिया गया है।

हे श्रीरामचन्द्र के प्यारे ! भक्तों में श्रेष्ठ वायु के सुपुत्र, महाबली हनुमान् ? अब कुछ समय के लिए तुम यहीं रुको, और सब जलव्यालों को भी प्रेरणा दो कि वे धीरे धीरे रुई के समान मृदु, इस दलदली क्षेत्र में बिना किसी बाधा के अपनी इच्छानुसार रेंगते रहें। यह स्थल घने और ऊंचे छाया-वृक्षों से परिवेष्टित है, हम भी इसी स्थल पर (स्थिर) रूपेण विश्राम करेंगे।

इत्थं विश्रम्य श्यामा सा नानावर्णैरलङ्कृता[52] ।
चिराय कृत[53] सन्तोषा वासः सुखमभजत ।।४५।।

इस प्रकार वह श्याम वर्णा महाराज्ञी, जो नाना रंगो से अलङ्कृत थी, वहीं पर ठहर गई, निदान सन्तुष्ट होकर चिरकाल तक यहीं पर रहने का संकल्प करके सुख भोगने लगी।

(महामाया महाराज्ञी, जिसने अपने निवास के लिए सारे सती देश का भ्रमण कर अब जिस भूभाग को वासार्थ निश्चित किया, उस का सीमाबन्धन इस प्रकार निर्णीत है)।

---

51) तूल— रूई के समान कोमल तथा नरम। माहात्म्यकार इस तीर्थ विशेष के नाम की ओर इशारा करता है। महाराजा जयापीड़ के राज्य-काल में यह 'तुलमूल्य' (काश्मीरी तुलमुल) ब्राह्मणों की एक समृद्ध बस्ती थी।

52) सम्भवत: माहात्म्यकार देवी के उस नाग की ओर इशारा करता है जिस का रंग देवी की मुद्रानुरूप बदलता रहता है। यह चमत्कार मानव—बुद्धि से स्पष्टत: परे है।

53) आगे बढ़ने से सन्तोष करके, इसी स्थान विशेष पर सन्तोष करके; यह ध्वनि भी प्रस्तुत श्लोक से मिलती है।

आभुवनेशाच्चतुंगेशात्तथा लाब्धवनादपि ।
भागोहादपि वै प्रोक्तं मण्डल[54] भुवि मण्डलम् ॥४६॥

यह स्थान जो बहुत ही ऊंचे २ शिखरों से सुशोभित हरमुकुट पर्वत, तथा उसकी तलहटी में वर्तमान 'भाग' नामक भूभाग, तथा लाब्धवन (वर्तमान-लोधवोन) इत्यादि क्षेत्रों से आवेष्टित मण्डलाकार का अद्वितीय भूमण्डल है। इसी मण्डलाकार क्षेत्र को ही वस्तुतः 'मण्डल' का नाम दिया गया है। (यह अत्यन्त मनोनीत स्थान है, इसका पाना अन्यत्र कहीं अत्यन्त दुर्लभ है। देवी ने यहीं रहना निश्चित किया) ॥

तूलवत्तुल्यतां यत्र स्थानान्यन्यानि सुन्दरि ।
लघु[55]भूतानि मूल्येन तस्मात्तु तूल[56]मूल्यकम् ॥४७॥

हे सुन्दरि ! देखो इस भूभाग के सारे के सारे स्थान तूलवत – रूई के गालों की तरह बहुत ही मृदु और कोमल हैं, तथा मूल्य में भी बहुत ही सस्ते हैं।

इसी कारण इस प्रशस्त-स्थान को लोग 'तूलमूल्यक', के शुभ नाम से पुकारते थे; जो अब 'तुलमुल' के नाम से प्रचलित है।

---

54) 'मण्डल, शब्द के प्रयोग द्वारा माहात्म्यकार ने सर्पों के प्रसंग में इसे उनके भूमि पर लोटते हुए शरीर के चारों ओर मण्डलाकार रेखाये खींचने के प्रति भी हमें संचेत किया है; इन रेखाओं में सपेरे द्वारा बन्दी बनाकर साँप मृतप्राय हो जाता है, अतः इससे डर

इत्थं व्यवस्थां स्वयं राजराज्ञी
विधाय प्रेष्य प्रिय रामदूतम् ।
चकार तत्र वसतिं स्व[57]भावकं
तनौ ममुः येन न शक्ति[58]भक्ताः ॥४८॥

इस प्रकार अपने भावों को निर्धारित कर भगवती महाराज्ञी ने प्रथम तो महाबली श्री रामचन्द्र के प्रियभक्त हनूमान जी को वापिस लङ्का भेज दिया, तत्पश्चात् स्वयं इस (तूल मूला) स्थान की व्यवस्था कर इसी को अपना स्थिर आवास निश्चित किया; यह जानकर महामाया आदिशक्ति के प्रिय भक्त प्रसन्नता से फूले न समाये ।

अत्रस्थिताभूच्छान्ता सा चीर खण्डाज्यभोजना ।
सात्विका[59]सत्वरूपा सा देवी पञ्चदशाक्षरी[60]॥४९॥

अब भगवती त्रिपुर सुन्दरी जो राक्षस-गृह (लंका) में 'श्यामा' तथा 'तामसी' नाम से विश्रुत थी, वही माता अब यहां (तूल-मूला स्थान में) स्वेच्छा पूर्वक मनोनीत निवास पाकर महान् शान्त स्वरूप, सात्विक मूर्ति, सत्वगुण प्रकृति वाली, दूध, शक्कर

नही लगता', महाराज्ञी के साथ आये हुए सांप भी इसी कारण विषविहीन होकर जनता के लिए भयावह न रह पाये । यह काश्मीरी किंवदन्ती हैं, कि जहां तक हरमुख पर्वत की दृष्टि जाती है, वहां तक सांप विषविहीन बन जाते हैं, स्पष्टतः सार्थक दिखाई पड़ती है ।

55) मोल में भी हल्के, सस्ते, दलदली ज़मीन प्रायः कश्मीर में 'नंबल, के नाम से विख्यात है, जो उपजाऊ नही मानी जाती ; अतः इसका मूल्य उतना नही होता ।

और घृतासिक्त भंग लेने वाली तथा (पञ्चदशाक्षरी) १५ अक्षरों वाले मूलमन्त्र से विभूषिता 'महाराज्ञी' इस सुन्दर नाम से प्रादुर्भूत हो गई ।

अस्या उपासनाप्राप्ता: मुनयः परमांगतिम्[61] ।
श्री रामो भजनादस्या लंकारावणमत्यघात् ॥५०॥

यह निश्चित है जगन्माता महाराज्ञी की उपासना से ही मुनिजन परम गति को पागये, यहां तक कि श्री राम चन्द्र भी इनके ही भजन द्वारा लंका के राजा रावण को मार पाये ।

अस्या: प्रसादनाद् देवि ज्येष्ठोभ्राता विभीषणः ।
नित्यं शान्तात्मना राज्यं लंकाया: प्राप्तवानलम् ॥५१॥
अस्यास्तु भजनात्सर्वे परांसिद्धि[62]मुपागता: ।

इतना ही नही हे देवी ! लंकाधीश (रावण) के बड़े भाई शान्तात्मा विभीषण महमाया की ही अनन्य भक्ति से लंका का राज्य प्राप्त कर लङ्काधिपति बन गये । और इसी महाराज्ञी के भजन से सब (साधकों) ने परम-सिद्धियां प्राप्त करलीं ।

---

56) तूल-रूई का सफेद - उजला वर्ण सिन्धु की लहरों के समान ही है, इसी रूई के स्वभाव के अनुरूप सिन्धु लहरियां (लघु) हलकी होकर ही बड़ी तेज़ गति से बहती जाती है ।
सिन्धु-स्थल के साथ रूई के वर्ण तथा स्वभाव का साम्य यहां पर द्रष्टव्य है ।

पुरा श्यामा[63] भवेद्यातु लङ्केश-भवने तदा ।
सैवेदानीं सतीदेशे महाराज्ञीतिविश्रुता ॥५२॥

प्राचीन काल में लंकाधिपति रावण के घर (लंका में) जो श्यामा के नाम से पूजी जाती थी, वही अब सती-देश (कश्मीर) में जगन्माता महाराज्ञी के नाम से सर्वत्र विख्यात है ।

रामराज्य प्रदा सैव तरुणी[64] या परा[65] कला[66] ॥५३॥
प्रपद्यमनसानां च सद्यो मोक्ष प्रदायिनी ।
पुत्रकामा महेशानि । धनं चापि धनार्थिनः ॥
विद्यार्थिनो महाविद्यां कन्यां कन्यार्थिनः प्रिये ॥५४॥

---

57) स्वभाव—अथवा स्व-भाव । प्रथम का अर्थ आदि प्रकृति, दूसरे का अपनी विद्यमानता, आस्था इत्यादि ।

58) आदिशक्ति, जगज्जननी ।

59) तामसी रूप में आमूल परिवर्तन आया, देवी सात्विक रूपा बन गई ।

60) १५ अक्षरों वाला मूल मन्त्र :-

उं	ह्रीं	श्रीं	रां	क्लीं	सौ	भगवत्यै	राज्ञ्यै	ह्रीं	स्वाहा ।
1	2	3	4	5	6 7 8 9 10	11 12	13	14 15	

इसी मूल मन्त्र के जाप—हेतु भगवती का कुण्ड भी 'जप-कुथिका' के आकार का है । (काश्मीरी 'जप कोथज्य')

61) परमागति—मोक्ष, जन्म-मरण से त्राण ।

62) सिद्धि :— अणिमा, लघिमा इत्यादि वशीभूत सिद्धियां, अथवा धर्म, अर्थ तथा काम से प्रेरित अभिलाषाओं की सफलता ।

63) श्यामा :- १) श्याम वर्णवाली ।
२) कोमलाङ्गी, अप्रसवा स्त्री ।
३) दुर्गा (तन्त्रों में) ।
४) कलकण्ठी कोकिला ।

यही भगवती महाराज्ञी रामराज्य जैसा न्याय-संगत वातावरण उपजाने वाली है, चिर यौवना तथा अनश्वर विभूति है। तथा अनन्य मन से भक्ति करने वालों अपने प्रिय भक्तों को तत्काल मुक्ति देने वाली है। यहां तक कि पुत्र की अभिलाषा रखने वाले को चिरञ्जीव पुत्र, कन्या की इच्छा रखने वालों को चंद्रकला समान कन्या, धन की कामना रखने वालों को अक्षय धन राशि, तथा विद्याभि-लाषियों को सफल विद्या तत्काल देती है।

धनं धान्यं पशूं श्चापि गृहक्षेत्रं निरन्तरम्।
प्रसादात्परमेशान्यः प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥५५॥

निश्चय रखो, देवी के प्रियभक्त इन्ही भगवती महाराज्ञी के प्रसाद से सब सांसारिक सुख, अतुलधनराशि, अपरिमित धान्य, हितकारी पशु, सुखद घर, खेती के लिए उपजाऊ भूमि तक सब प्राप्त करते हैं, विशेषकर आप मानिये, इस में तिलमात्र भी संशय नहीं है।

---

64) तरुणी — चिरयौवना,
तन्त्रों के अनुसार सिन्दूर-वर्णा भैरवी।

65) परा — परा वह है जिस से अविनाशी जानाजाये
(ब्रह्मविद्या)

66) कला — विभूति, षोडशीया।

67) क) महा विद्या — इस का अर्थ दुर्गा अथवा लक्ष्मी के रूप में भी किया गया है। (मार्कण्डेय पु० वायुपुराण आदि)
ख) शिव की दस शक्तियों का सामूहिक नाम (सारचन्द्रोदयस्तोत्र)।
ग) शिवसूत्रों में इसे "न मातृकाऽपरा" की संज्ञा दी गई है।
घ) अ - से ह तक की वर्णमाला।

दिव्यं-चैवान्त[69]रिक्षंच-भौमं घोरमुपद्रवम् ॥५६॥
महामारी भयं घोरं भयं दुर्भिक्षजं तथा ॥
महाराजभयं चापि भजनान्नाशयेद्ध्रुवम् ॥५७॥

हे देवि ! इसके माहात्म्य के विषय में स्मरण रहे कि चाहे कोई भी देवी-भक्त किसी भी भयङ्कर उपद्रव में निमग्न क्यों न हो, आकाश की ओर उद्भूत उत्पात-ग्रस्त क्यों न हो, अन्तरिक्ष में प्रकटित उपप्लव पूर्ण क्यों न हो । उत्कट महामारी के विनाशकारी भय में फंसा हुआ ही क्यों न हो, अकाल से उत्पन्न दुर्भिक्ष के भय में लीन क्यों न हो, अथवा राजा की ओर से प्राप्त दण्ड भयाभिभूत ही क्यों न हो, निश्च रखो बस केवल मात्र भगवती महाराज्ञी के भजन से ही ये सब सब भय भस्मीभूत होते है (समूल नष्ट होते है)

---

68) परमेशानी - परम शिव की शक्ति स्वरूपा आदि देवी, स्व - निर्भर तथा सर्वोपरि देवी ।

69 दिव्यम्, अन्तरिक्षम्, भौमम् इन तीनों पर प्रकट होने वाले उत्पात; आकाश तथा धरती के बीच का शून्य तथा भूमि ।
भूः भुवः स्वः ।

70) मुक्ति के चार भेदों (अवस्थाओं) में एक, जब भक्त और भगवान् दोनों एकाकार हो उठते हैं ।

71) "मननात् त्रायते यस्मात् तस्मात् मन्त्रः प्रकीर्तितः"
क) अर्थात मन्त्र उनका नाम है, जो एकाग्र होकर वाचिक और मानसिक भाव से मनन करने वाले की पूर्ण रक्षा करता है ।
ख) 'मन्त्र्यते—गुप्तं परिभाष्यते ।'
गुप्तरूप (रहस्य पूर्वक) जिसका मनन किया जाता है ।

महा संकट मापन्नः प्रमुच्येत्सकंटादपि ।
रोगात्प्रमुच्यते रोगी तरेदापन्न आपदः ॥५८॥
भवेच्चेह महाभोगी सोन्ते सायुज्य[70]माप्नुयात् ।

इतना ही नहीं, कोई भी भक्त चाहे किसी बड़े से बडे संकट में पड़ा हुआ हो, किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो, अथवा सांसारिक आपदाओं में ग्रस्त हो, (बस झट भगवती की शरण लेने से सब प्रकार के संकटों से छूटजाता है) निदान सब ऐहिक और पारत्रिक सुखों को भोग कर वह अन्त में सायुज्य (मुक्ति) को प्राप्त करता है ।

योस्याः मन्त्रं[71]जपेत्पूर्णं सागोपाङ्ग[72]रहस्यकम् ।
[73]यन्त्र पूजां प्रकुर्वाणः शिव एवेति निश्चितम् ॥५९॥

ग) "मन्त्रयते—रहस्येन परिभाष्यते" ।
बीजाक्षरों से सम्पन्न रहस्यात्मक मनन का नाम 'मन्त्र' है
बीजाक्षरों से सम्पन्न महाराज्ञी का मन्त्र इस प्रकार है :-
'ॐ ह्रीं श्रीं रां क्लीं सौ भगवत्यै राज्ञ्यै ह्रीं स्वाहा'

72) तन्त्र के ६ अङ्ग (भेद विन्यास) हैं जिन में मन्त्र के बीजाक्षरों का षड़ङ्ग न्यास [illegible] ता ।

73) कोई गूढ-गहन रेखा–चित्र, जिसे व धवत् सोने, चांदी अथवा तांबे पर उत्कीर्ण किया गया हो । यहां पर यन्त्र-पूजा का अर्थ महाराज्ञी के सन्दर्भ में उसके यन्त्र विशेष से हैं ।

(प्रस्तुत पुस्तक के आदि में अङ्कित) ।

इसके अतिरिक्त निश्चय रखो जो भी कोई महामाया महाराज्ञी के मन्त्र का जाप जिसमें सम्पूर्ण अङ्गों–उपाङ्गों का रहस्य पूर्ण विधिविधान हो नियत समय तक करता रहे; अथवा इन्हीं जगदम्बा के सिद्ध यन्त्र की सर्वोपस्कार युक्त विधि पूर्वक श्रद्धा से पूजा करे, निश्चय ही वह कल्याणकारी शिव से सायुज्य (एकाकार) प्राप्त कर शिव ही बनता है।

अथवा वाग्भवै र्मन्त्रैः पूजयेज्जगदम्बिकाम्।
गंगा प्रवाह वद्वाणी भवेत्तस्य न संशयः ॥६०॥

अथवा वाग्भवैः (बीजाक्षरों से सम्पन्न रहस्यात्मक) मन्त्रों से जो भी कोई जगदम्बा की एकाग्रमन से पूजा करता रहे, इस में जरा भर भी संशय नहीं, निश्चय जानो गंगा के जल प्रवाह की तरह बिना किसी बाधा के उसकी वाणी निरर्गल चलती रहेगी।

इयं पञ्चदशीख्याता तरुणी परमा कला।
त्रिपुरायाः परादेव्या महाराज्ञीतिविश्रुता ॥
शान्त स्वरूपा देवेशी महाशान्तैरुपासिता ॥६१॥

श्री भैरव भैरवी से कहते हैं, हे देवि! यह न भूलना, श्री जगदम्बा महाराज्ञी तूलमूला स्थान में प्रतिष्ठा पाकर अति विख्यात हो गई, वास्तव में यह परा देवी श्री त्रिपुर सुन्दरी की ही ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी एक विभूति है। क्षीर खण्डाज्य-भोज प्रिया है, अत्यन्त शान्त-स्वरूपा है, यही कारण है, शान्तात्म

मुनि तथा देवी के प्रिय भक्त इसकी उपासना पञ्चदशाक्षर (१५ संख्यक बीजाक्षरों) वाले मन्त्र से करते आये हैं। इसी से श्री महाराज्ञी 'पञ्च दशाक्षरी' नाम से विभूषिता है। वस्तुतः यह 'पञ्च दशाक्षर' मन्त्र महादेवी का अभीष्ट शान्त महामन्त्र है। अतः शान्त प्रकृति-भक्तजन इसकी ही साधना (उपासना) करते हैं।

यदारावणगेहेऽभून्महा श्री तामसी कला।
[75]द्वाविंशत्यक्षरा घोरा तामसी समुपासिता ॥६२॥

हां, जब महामाया रावण के घर (लंका में) तामसी रूपा श्यामा नाम से रहती थी, तो वहां तमोगुणी व्यक्ति इसकी उपासना द्वाविंशति (२२ बीजाक्षरों वाले) मन्त्र से करते थे।

---

73 ख) (दुखंनिर्यन्त्रणाद् यन्त्र-मित्याहुस्तंत्रवेदिनः)
जिससे सर्वप्रकार के दुखों का स्तम्भन हो, तन्त्र - वेता उसी को यन्त्र कहते हैं।

ग) यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रात्मा दैवतैव हि।
देहात्मनोः यथाभेदो यन्त्र दैवतयोस्तथा ॥
यन्त्रमित्याहु-रेतस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः।
विना यन्त्रेण पूजायां देवता न प्रसीदति ॥
आदौलिखेत् यन्त्रराजं देवतायाश्च विग्रहम्।
काम क्रोधादि दोषोत्थं सर्वदुःखनियन्त्रणात्।

74) ॐ ह्रीं श्रीं रां महाराज्ञी—क्लीं सौ षञ्चदशाक्षरी।
ह्रीं स्वाहा त्र्यक्षरी विद्या—परा भगवती विभा ॥
(राज्ञी पञ्चदशाक्षरी मता)
(ॐ ह्रीं श्रीं रा क्लीं सौ भगवत्यै राज्यै ह्रीं स्वाहा)
इति शुद्ध मन्त्रः

[76]महाश्यामेतिविख्याता घोरभक्ष्या[77] सुरोत्तमा ।
सतीदेशमनुप्राप्ता नीता हनुमता स्वयम् ॥६३॥
अनन्तनाग सहिता रामानुज्ञानुकारिणी ।
उपासिता ददत्येवं सर्वान्कामान् यथेप्सितान् ॥६४॥

रावण के घर में यह सुरोत्तमा (सब देवों में उत्तमा-देवी) घोरभक्ष्या के कारण 'महाश्यामा, के नाम से प्रसिद्ध थी। परं जब इसे वहां 'घोर भक्ष्या के कारण' अरुचि हुई तो श्री राम चन्द्र जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर उनके विशेष दूत वायु-पुत्र हनूमान के द्वारा यह अपने सब अनन्त-जलव्यालों सहित सतीदेश-काश्मीर को पहुंचाई गई, यहां पहुंच कर इसे श्री 'महाराज्ञी' शुभ नाम पड़ा तथा १५ बीजाक्षरों वाले शुभ मन्त्र से इसकी पूजा की गई। इस प्रकार श्री भगवती अपने प्रिय भक्तों की यथेप्सित (मनोवाञ्छित) कामनाओं को पूर्ण करती आई।

इत्येतत्कथितं देवि यत्पृष्टोहमिह[78] त्वया ।
श्यामाभूद्रावणे गेहे सत्ये राज्ञीति विश्रुता ॥६५॥

---

75 क) "द्वाविंशत्यक्षरी श्यामा, राज्ञी पञ्चदशाक्षरी मता।"

ख) "द्वाविंशत्यक्षरी श्यामा - महाकाल कुटुम्बिनी"

ग) "श्मशान कालिका श्रीं ह्रीं—काली श्री कृष्णकालिका।
क्लीं कारोत्तर काली श्रीं हूं ह्रीं दक्षिण कालिका॥"
(राज्ञी सहस्रनाम)

घ) "द्वाविंशत्यक्षरा - श्यामा"

इस प्रकार जो तुमने महामाया जगदम्बा के 'श्यामा' तथा 'राज्ञी' के नाम विषयक प्रश्न मुझ से पूछो, उन सब का मैंने इस प्रकार संक्षिप्त उत्तर दिया; जो देवी रावण के घर में 'श्यामा, नाम से पुकारी जाती थी, वही यहां पर 'श्री महाराज्ञी' इस शुभ नाम से विख्यात हुई ।

अस्यास्तु श्रवणात् पुण्यं
भवेत् यज्ञायुतं कलौ ।
एतत् पाठाद् महादेवि-
सद्यो मुच्येत बन्धनात्[79] ।६६।।

हे महादेवि ! अब यह भी सुनो, इस कलियुग में जो भी कोई श्री महाराज्ञी सम्बन्धित 'तूलमूल' वर्णन विषयक भैरव-भैरवी संवाद का केवल श्रवण करेगा, उसे 'यज्ञायुतं पुण्यं' दस हजार यज्ञों का पुण्य फल प्राप्त होगा, तथा इसी प्रकार इसका केवल पाठ-मात्र करने वाला भक्तजन निश्चय ही संसार के सर्व बन्धनों से छूट जायेगा । (बन्धन-मुक्त हो कैवल्य पायेगा)

---

76 २२ बीजाक्षरों वाला घोरमन्त्र :-

क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके
1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13

ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा
14 15 16 17 18 19 20 21 22

77) घोरभक्ष्या :—

बलि में दिये गये मांस--रक्त इत्यादि का भक्षण करने वाली 'श्यामा-काली-

इति श्री भृङ्गीशसंहितायां भैरव-भैरवी संवादे महाराज्ञी प्रस्तावे 'तूलमूल वर्णनं' नाम प्रथमः पटलः ।।

आदि; परन्तु सतीदेश में पहुँचकर महाराज्ञी के रूप में उसका शुभ-सौम्य स्वभाव हो गया।

78) यहां पर भी तन्त्र परिपाटी का पालन किया गया है। जब भैरवी की शङ्काओं का समाधान हो जाता है, तो इस प्रकार की भाषा प्रयुक्त की जाती है।

79) तन्त्र-परम्परा के अनुसार इसे 'फल' की संज्ञा दी गई है।

ॐ

श्री महाराज्ञी-प्रादुर्भाव-विवरणम्

अथ द्वितीयः पटलः

(भृङ्गीश - संहिता - तः)

श्री महाराज्ञी - भगवत्यै नमः !

(महामाया जगन्माता श्री भगवती-महाराज्ञी को नमस्कार हो)

श्री भैरवी :-

देवदेव महादेव सर्वज्ञ[1] परमेश्वर ।
कृपां कुरु महादेव विस्तरेण[2] श्रृणोम्यहम् ॥१॥

श्री भैरवी जी प्रथम पटल में वर्णित सारे इतिवृत को सुनकर अपने प्रिय पति भैरव से फिर एक बार कहने लगती है ।

हे भूर्भुवःस्वः (त्रिलोक में) भूत-भविष्यत्-वर्तमान (त्रिलोक में) कहां क्या हो रहा है, सब कुछ जानने वाले (सर्वज्ञ)! देवादिदेव ! सर्वश्रेष्ट महादेव ! मुझे यह सब इतिवृत्त सविस्तृत सुनने की बलवती इच्छा है ! इस बारे में इसके सुनाने की मुझ पर कृपा कीजिए कि :-

---

1) सर्वज्ञ–शंकर का एक नाम—सब कुछ जानने वाले ।
(प्रथम पंक्ति में दिये गये सब शब्द 'शिव' के ही पर्याय हैं ।

2) प्रस्तुत द्वितीय पटल में उन बातों को विस्तार से समझाया गया है, जिन का सङ्केत प्रथम पटल में दिया गया है ।

कादेवी त्रिपुरा प्रोक्ता कथं श्यामाभवत्स्वयम् ।
कथं रामेणार्चिताभूत्कथं प्राप्ता सतीसरम् ॥२॥
एतत्सर्वं महादेव किंकरास्मि[3] तव प्रिय ।

'यथार्थ में वह कौनसी देवी है, जो 'श्री त्रिपुरा' इस शुभ नाम से पुकारी जाती है; इसी ने स्वयं 'श्यामा' स्वरूप क्योंकर धारण किया था। त्रेतायुगवर्ति दशरथनन्दन श्रीराम से कैसे इसकी पूजा की गई, और अन्त में किस कारण सतीसर (कश्मीर) में इसका पदार्पण हुआ; अर्थात् कश्मीर के एक प्रान्तस्थ तूलमूला में क्यों कर ठहर गई।

प्यारे सर्वेश्वर महादेव ! मैं आपकी कोई भी आज्ञा शिरोधार्य करने को उद्यत हूँ, पर कृपया मुझे इस सब वृतको सविस्तृत सुनाने से कृतार्थ करिये !-

श्री भैरवः

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं गिरिजे[4] त्वया ।
अस्याः श्रवण मात्रेण सर्ववृद्धिः प्रजायते ॥३॥

श्री भैरव अपनी प्रियतमा की इस अति आतुर जिज्ञासा का समाधान करते हुए इस प्रकार बोलते है :-

---

3) सेविका—'कोई भी आदेश पूरा करने को तैयार। विश्वमय रूप जो विश्वोत्तीर्ण के अधीन है।

4) हिमालयगिरि से प्रसूत, पार्वती, शिव की अर्धाङ्गिणी।

हे गिरिसुते ! सुनिये, जिसके बारे में आपने मुझ से इतना आग्रह किया है, मैं वह सब पूर्ण विस्तार से सुनाता हूँ, साथ ही निश्चय रखना, यह कथा-निर्देश कोई साधारण नही है, हां इसके श्रवणमात्र से ही सब प्रकार की वृद्धि जिज्ञासु प्राप्त करता है।

विधातृपुत्रतनयः पौलस्त्यो रावणोऽ[5]सुरः ।
महादेव कृतां लज्जां दृष्ट्वा रुरोद सोऽसुरः ॥४॥

(कथा-निर्देश इस प्रकार है)

महादेवि सुनो, बहुत समय पहले की बात है एक दिन स्वयं त्रिलोक दर्शी महादेव अपना मृगासन बिछाये, उस पर विराजमान थे, तो इसी समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी के पौते मुनि पुलस्ति जी अपने पुत्र रावण को साथ लिये वहीं आ बैठे, तो क्या हुआ दैत्य रावण महादेव की ओर देखकर झटिति ज़ोर ज़ोर से रोने लगा इतना कि स्वयं महादेव भी लज्जा से सहम गये।

पुलस्तिं च शिवः प्राह किमर्थं रुदति शिशुः ।
तमुवाच मुनिः श्रीमन् लंकां प्रार्थयति प्रभो ॥५॥

निदान महादेव से न रहा गया, वह रावण के पिता मुनि-'पुलस्ति से बोले, मुनिवर! क्या कारण है किसलिए यह आपका

---

5) असुर जाति का 'रावण' ब्रह्मा का प्रपौत्र था—दिति और अदिति ब्रह्मा की दो पत्नियां थीं, प्रथम से दैत्य (असुर) और दूसरी से आदित्य (सुर

बच्चा रोता है" । सुनते ही पुलस्तिमुनि बोल उठे, श्रीमान् ! प्रभुवर ! बच्चे ने समुद्र में रत्नजटित लंका को देखा है, इस का मन ललचा गया तभी रोता है और अब आप से उसी को पाने के लिए प्रार्थना करता है ।

प्रहस्य तं मुनिं ाह देवदेवो वृषाकपि:[6] ।
श्रणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि त्वत्तनूजो ह्ययं शिशुः ॥६॥
भुवनानां[7] दुःखदायी भविष्यति न संशय: ॥७॥

देवादिदेव-भगवान-वृषाकपि मुनि की यह बात सुनकर पहले अपने आप कुछ हंसे फिर उस से बोले ।

हे ब्रह्मन् ! सुनिये, मैं सब बताता हूँ । आपका यह पुत्र (रावण) जो अभी बालक हैं, प्रौढावस्था में पदार्पण करते ही सारे भुवनों के (प्राणियों के) लिए महान् दुःखदायी साबित होगा, कोई भी प्राणी इस के आतङ्क से न बचेगा । इस में तिल मात्र भी ंशय नही है ।

अस्मै दास्याम्यहं लङ्कां सुप्रियां राक्षसेश्वर ।
आदौ तप: प्रभावेन प्रसन्न: क्रियतां विधिः ॥८॥
तस्मात्प्राप्तवरो नित्यं लंका राज्यं करिष्यति ।

पैदा हुए, अतः सुरों और असुरों की मातायें ही भिन्न थी, क एक ही था ।

6) वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा—इति "मेदिनी" ।

7) भुवन— जगत (संसार) ये-भुवन दो, तीन सात अथवा चौदह भी माने गये हैं । जगत में रहने वाले प्राणियों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता हैं ।

हे राक्षसेश्वर, हां, मैं अब इसे बहुत प्यारी लंकापुरी देता हूँ, परं शर्त एक है कि यह बालक अपनी प्रगाढ तपस्या के प्रभाव से सृष्टिकर्ता बृह्मा जी को पहिले प्रसन्न करे। उनसे यथेष्ट वर प्राप्त करे, तब यह चिरकाल तक लंका पर राज्य करेगा।

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा रावणो[8]लोक कर्षणः
प्रहस्य चेश्वरं प्राह प्रणयानत कन्धरः ॥९॥

इस प्रकार भगवान शंकर से कहे ये वचन सुनकर लोगों को घसीटने वाला (दुःख देने वाला) रावण पहिले अपने आप कुछ हंसा, फिर बडे विनम्र भाव से सिर और गर्दन नीचे झुका कर भगवान शंकर से बोले :-

देवदेव महादेव शरणागत वत्सल।
कोब्रह्मा जगतांसृष्टा त्वद्ध्यान मुखरीकृतः[9] ॥१०॥

हे शरणागत वत्सल—(शरण आये हुओं की रक्षा करने वाले) देवादिदेव महादेव! (आपने जो मुझे बृह्माजी की आराधना करने के बारे में कहा) वास्तव में वह जगद्सृष्टा बृह्मा जी भी आपके सामने कौन है जबकि वह भी (अपनी सत्ता से नही) आपकी ही नित्यप्रति ध्यान-धारणा से वाचाल (चार वेदों के

---

8) 'रावण – 'रावयति-भीषयति सर्वानिनि'...जो सब को डराता है अतः 'लोक-कर्षण' लोगों को दुख देना वाला नाम यथार्थ है।

9) ध्यान के साथ साथ ब्रह्मा की महिमा का गान करना 'मुखरी कृतः से यह ध्वनि भी निकलती है।

उच्चारक) बन गया है। अथवा—आपकी ध्यान-धारणा (अनन्य भक्ति से) जब मैंने भी मुखरी भाव (वाक्-शक्ति, वैखरी) प्राप्त की हो, तो इस अवस्था में भी वह बूह्मा किस गिनती में है।

त्वंसर्वव्यापी विश्वात्मा[10] देवदेव महेश्वर।
प्रपन्नं पाहि[11] मां भक्तं कृपया परमेश्वर ॥११॥

इस कारण हे देवादिदेव महेश्वर! यह सिद्ध है कि आप सर्वव्यापी (चराचर में समाये हुए) तथा विश्वात्मा—(सम्पूर्ण संसार की आत्मा) हो, विष्णु-बूह्मा आदि सब आप पर ही आधारित है, मैं भी आप की शरण आया हूँ, कृपया मुझ शरण आये हुए का उद्धार की जिये। ताकि मुझे कहीं अन्यत्र जाना न पड़े।

यदुक्तं परमेशान मच्छ्रेय:[12] प्राप्ति कारणम्।
तपो महेश्वर विभो येन ब्रह्मा प्रसीदति ॥१२॥

---

10) विश्व-'विश्वं वै ब्रह्म' (भागवत १०-१२) चराचर सृष्टि जो इस चराचर जगत का प्रेरक है, अथवा जिससे यह सारा जगत समाया हुआ है।

11) 'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'...(श्री गीताजी–II-७)
'शूलेन पाहि इत्यादि' ...(दुर्गा सप्तशती ४ अध्याय)

12) श्रेय :- (श्रेयस) सौभाग्य, सांसारिक लाभ तथा उन्नति, अथवा 'मेरे लिए अच्छा श्रेयस्कर' 'श्रेयोहिज्ञान मभ्यासात'
(श्री गीताजीXII-१२)

13, विन्ध्याचल ..मनु के अनुसार यह मध्य देश भारत की दक्षिणी सीमा है।
(मनुस्मृति II-२१)

हे सर्वेश्वर भगवन ! अब जो आपने मेरी ही उन्नति (कल्याण) के लिए मुझे 'बृह्मा जी को प्रसन्न करने का आदेश दिया है, शिरोधार्य है। हे प्रभो ! सो मैं सम्पूर्ण तप-(अर्चना आदि) सब विधिविधान करूंगा, जिससे बृह्मा जी प्रसन्न-चेतसा मुझ पर प्रसन्न हो जायेंगे ।

[13]तदाविन्ध्यं प्रतिगतो रावणो बालकोपि[14] सन् ।
तपश्चचार परमं दुष्करं दैव मानवैः ॥१३॥
वर्षाणामयुतं देवि ब्रह्मा प्रीतस्तुतं प्रति ।

इस प्रकार भगवान शंकर से, आदेश ले, रावण, यद्यपि वह अभी बालक अवस्था में ही चलरहा था, विन्द्याचल पर्वत पर तपस्या करने निमित्त चला गया, और वहीं पर उसने वह तपस्या, (देव हो, या दानव कोई भी जिसे नहीं कर सकता था) साध ली। (कठोर से कठोर तप का अनुष्ठान किया।) हे देवि! यहां तक दसहजार वर्ष बीत गये। अन्त में उसकी कठोर साधना से प्रसन्नचित स्वयं बृह्मा जी उस पर प्रसन्न हो गये।

भारत के उत्तर और दक्षिण के बीच की पर्वत श्रृङ्खला प्रतीत होता है कि 'विन्ध्याचल के प्रति गया' के प्रयोग से रावण भारत के दक्षिण में वास करता था, और सामने ही समुद्र की छाती पर विराजमान लङ्का के प्रति उसका मोह हो गया था। सम्भवतः यह स्थान 'विन्ध्येश्वरी' का हुआ होगा, जहां रावण ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया।

14) बालक अथवा शास्त्रविहित अनुष्ठान दीक्षा इत्यादि के प्रति असावधान।

ब्रह्माद्याविरभूत्तत्र प्रीतोस्मीति वरं ददौ ।
भो भो पौलस्त्य सुभग[15] किं याचे वद सत्वरम् ॥१४॥

तो क्या हुआ, ब्रह्मा जी स्वयं रावण के पास साक्षात प्रकट होगये, और रावण से बोले, अरे प्रशस्त भाग्य वाले पुलस्ति के प्रिय पुत्र : मैं तुम्हारी साधना से तुम पर बहुत प्रसन्न हो गया हूं, और तुम्हे अभीष्ट वर देने आया हूं, बोलो, शीघ्र बोलो, क्या तुम मांगना चाहते हो ।

इत्याश्रुत्यवचोदिव्यं रावणो दनुजप्रियः ।
प्रोवाच तं महादेवि ब्रह्माणं प्रपितामहम्[16] ॥१५॥

हे महादेवि ! इस प्रकार राक्षसों का प्यारा रावण दिव्य-स्वरूप ब्रह्मा जी के विश्वास भरे वचनों से आश्वस्त हो अपने ही बड़दादे ब्रह्मा जी से यह बोला ।

[17]वरदोसि यदा देव ! लंकां[18]देहि जगत्पते ।
मह्यं सुखाय वासाय यतोऽ[19]जेयोभवाम्यहम् ॥१६॥

---

15) सौभाग्य के अधिकारी:, सुन्दर, सौम्य अपनी तपस्या द्वारा अथवा आयु के कारण ।

16) प्रपित मह—बड़दादा सृष्टि का आदिकर्ता, इसे "पुरातन पुरुष" की भी संज्ञा इसी कारण दी गई है ।

17) वरद :– वर को देने वाला, यदि आप मेरी तपस्या से सन्तुष्ट होगये, तो मेरे मन की तुष्टि आप के इस वर देने से होगी ।

18) लंका—स्वर्णमयी लङ्का का वर्णन रामायण में आया है, असुर रावण की प्रीति केवल सांसारिक लाभ के प्रति होनी स्पष्ट है ।

हे जगस्वामिन् ! जब आप मुझ पर दयालु बनकर मुझे वर देने पर उतर आये हो, तो कृपया मुझे सम्पूर्ण लंका समर्पित कीजिये, जिस से मैं सदा के लिए वहीं सुख और चैन से निवास करूंगा, और सब के लिए अजेय बनजाऊंगा (निष्कंटक रहूँगा)

(लंकापुरी अगाध समुद्र के मध्य प्रतिष्ठित है, यही कारण है, वहां किसी का आक्रमण करना क्या, वहां जाना तक अति दुष्कर है, अतः अजेय है ।)

इति श्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य महेश्वरि ।
लंका प्राप्तात्वया शम्भो[20] रजेयस्त्वं भविष्यसि ॥१७॥

हे महेश्वरी ! इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञ रावण की यह बातें सुनकर स्वयं ब्रह्मा जी उसे बोले, प्यारे रावण, निश्चय रखो अब तुम कल्याणकारी भगवान् शंकर के आदेश से अवश्य लंका पाओगे, और सब के लिए अजेय बन जाओगे ।

साथ ही 'अमर कोष में लङ्का, का पर्याय 'दुश्चरिता' के रूप में भी दिया गया है । अतः दुष्ट रावण लङ्का पाने के लिए इतना उत्सुक है ।

19) जिस पर कोई शस्त्र विजय न पा सके ।

20) शम्भु :- शं - मङ्गलं भवत्य ऽस्मादिति शम्भुः, शिवः, एकादशरुद्राणामन्यतमः ।

(विष्णुपुराण)

महामाया[21] हरे: सम्यग् सीता यावन्न जायते।
तावद् देवै मनुष्यैश्च दैत्यै र्मानव पुंगवै:[22]॥ १८॥
अजेयोह्यसि पौलस्त्य ति सत्यं वदामि ते।

परन्तु मुनि-पुलस्ति के पुत्र रावण, देखो यह ध्यान में धरना और याद रखना, यथेष्ट वर पाकर देवताओं, मनुष्यों, दैत्यों तथ मनु की सन्तान श्रेष्ट मानवों में तुम तब तक ही लंका में अजेयता पाओगे जबतक रामावतारी श्री भगवान्-हरि की महामाया (आद्यशक्ति) श्री सीता माता का जग में प्रादुर्भाव न होने पावे। बस यही आपकी अजेयता की अवधि है, यह सत्य है और मैं तुम्हे यही बोलता हूं।

---

21) महामाया— आदिशक्ति:।
"शक्ति : सा शिवस्य शक्ति:, (आनन्द सूत्रम्-२)
'नशिव: शक्तिरहितो नशक्ति: शिव वर्जिता'
(तन्त्रालोक आह्निक ३॥)
महामाया 'शिव का विश्वमय रूप है, सृजन की प्रेरणात्मक शक्ति हैं, 'एकोऽहं बहुस्याम:, का ज्वलन्त उदाहरण (प्रमाण)।

22) सृष्टि में सप्राण जातियों का वर्गकिरण, मनुष्य, दैत्य, मनु की सन्तान मानव, तथा उन में श्रेष्ठ (पुगंव) मनुष्य तथा मानव समानार्थक होने के कारण, यहां पर मनुष्य का अर्थ पिण्डदान लेने वाले पितर भो माना जायेगा। (तैत्तिरीय ब्राह्मण)
माहात्म्यकार सम्भवत: ब्रह्मा के मुख से यह कहलवाना चाहता है, कि रावण के श्रेष्ट वीर (पितरों में असुरों में तथा मानवों में) केवल वही रावण अजेयता प्राप्त कर सकता है। रावण के पितर ब्राह्मण ही थे, जब कि वह स्वयं कर्म से असुर था।

ततोऽसौ रावणोलंकां प्राप्यचेश्वर मताम्
देवानां दुःखदो भूत्वा दैत्यानां सुखदो भवत्[23] ॥१६॥

तो रावण ब्रह्मा द्वारा कथित अवधि की ओर ध्यान न देकर (अभीष्ट वर) ईश्वर द्वारा रचित लंका को पाकर उच्छृङ्खल बन सम्पूर्ण देव-समाज के लिए दुःखदायी प्रमाणित हुआ (देवताओं को तरह २ के दुःख देता रहा) और स्वजातीय-राक्षस-वर्ग को सम्पूर्ण सुख देता रहा।

वर्षाणामयुतं प्राप्य शिवाराधन तत्परः ॥२०॥
[24]मलये देवनिलये चकार तप उत्तमम् ॥

---

23) जन्म से ब्राह्मण वह रावण, देवों को दुःख देने वाला, तथा दैत्यों के लिए वरदान था।

24) उपरले श्लोक नं० १७ में कहा गया है, कि रावण ने ईश्वर से निर्मित लङ्का को प्राप्त किया, परन्तु प्रस्तुत श्लोक नं० २० में मलय पर्वत का नाम लेने से यह प्रतीत होता है, कि वह तपस्या हेतु फिर भारत में लौटा था, जो यथार्थ जान नही पड़ता, अतः इस 'मलय, का लङ्का में ही विद्यमान होना सगत दिखाई देता है

"मलये देव निलये" का इस प्रकार सहज रूप में अर्थ हो सकता है :-

अ) लंङ्का में ही स्थित मलय, चन्दनों से युक्त देवआश्रम में।

आ) लंका की चन्दन गिरि के इष्टदेव के मन्दिर में।
(लंका में भी चन्दन बहुलता से पाया जाता है।)

इ) 'मलय' कदा कदा 'चन्दन' का पर्याय भी माना गया है।

ई) 'मल'—सब प्रकार के मलों–भेदात्मक ज्ञान को 'य-दूर' करने वाले देवालय में।

"यः याति वातीति" (शब्द रत्नावली)

न सन्तुष्टोऽभवत् देवि शंकरो देव शंकरः ॥२१॥

पर, आश्चर्य है, रावण जहां एक ओर राक्षसों का सुखकारी और देवताओं का दुखदाई प्रमाणित हुआ, वहां दूसरी ओर एक नहीं, दस हजार वर्ष तक भगवान शंकर की अराधना पर तत्पर हो, मलय नामक पर्वत पर प्रतिष्ठित देवालय(मन्दिर) में सर्वोत्तम तपस्या में मग्न रहा, पर इतना कुछ करने पर भी देवताओं के कल्याणकारी भगवान् शंकर उस पर पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हुए थे।

नारदो[25]भगवद् दूतो गत्वा रावण सन्निधौ।
दृष्ट्वा रक्षोधिपं विप्रो[26]ह्युवाच मुनि पुंगवः ॥२२॥

इसी समय तीनों लोकों में अप्रतिहतगति, भगवान के दूतकार्य में निपुण (अग्रणी) मुनि-पुमंव, देवर्षि-नारद रावण के पास आये और उसे बोले।

---

25) 'नारद'— यां तो भगवान से दूत रूप में भेजा गया अथवा वह भगवत्कार्य में रतें दूत स्वयं ही है। देवदूत नारद का ही नाम है।
नारद की व्याख्या धर्मशास्त्रों में इस प्रकार की गई है :-
क) 'नारं'—परमात्मविषयकं ज्ञान ददाति य: स: नारद:।
ख) 'नारं'—जलं ददाति पितृभ्य: इति
ग) 'नारं'—नर समूहं द्यति–खण्डुयति कलहेनेति ॥

26) नारद को देवर्षि माना गया है [श्री गीताजी–१०–२६]
यहां पर 'विप्र' शब्द के प्रयोग से यह 'ब्रह्मर्षि' दीख पड़ता है। सम्भवत माहात्म्यकार नारद का एक और विशिष्ट गुण प्रकाश में लाना चाहता है। वि+प्र=विगता प्रवृत्ति भवमोह यस्मात स: 'विप्र:' सांसारिकता के प्रति जो विमुख रहे, जिसमें निवृत्ति (आध्यात्म-लाभ की प्रचुरता हो।

किंकृतं हि त्वया दैत्य ह्युत्तमाङ्ग विकर्तनम् ।
निष्फलमभवत्सर्वं प्रसादरहिते शिवे[27] ॥२३॥

रावण ! निश्चय रखना, 'ह धर्म के अनुसार कमल पुष्प के समान जो तम ने अपने सिर श ंकर के समर्पण किये, यह सब आड़म्बर तब तक स र्था निष्फल है, जब तक भगवान श ंकर की प्रसन्नता प्राप्त नही करोगे। इस कारण भगवान श ंकर की प्रसन्नता का साधन प्राप्त करो।

नन्दी च तुम्बुरुश्चैव[28] लास्यनृत्त[29] पराबुभौ।

---

* किंवदन्ती है, रावण में भगवान शिव की दृढ भक्ति इतनी प्रचुर मात्रा में थी, कि शिवाराधना में उसने अपने सिर ?? पुष्पांजलि के रुप में शिवार्पण किये थे।
(शिर : पद्मश्रेणि रचितचरणाम्भोरुहवलि० इति।
'महिम्नस्त्रोत्र, का यह श्लोक इसका ज्वलन्त प्रमाण है।)

27) शिवा—शिव की अर्धाङ्गिणी, आदिशक्ति।
"शिवाय यां जपेद् देवीं शिवालोके ततः स्मृता' आदि
[देवी पुराण]
जिस आदिशक्ति का जप शुभ मङ्गल के लिए किया जाये, संसार में वही 'शिवा' कहलाती है।
शिव की आराधना उसकी शक्ति स्वरूपा दुर्गा, पार्वती के अनुग्रह बिना निष्फल है। शैवाचार्यो ने इसे 'शक्तिपात के नाम से अभिहित कया है।

28) च+तुम्बुरु, च अथवा च.—शिव का द्योतक।
तुम्बुरु:- ढोल, नन्दी जो शिव के आगमन अथवा निर्गमन के समय ढोल बजाकर इस आशय की घोषणा करता है।
तुम्बुरुः के पश्चात चैव होने से इस के पूर्व 'च' की यह व्याख्या संगत जान पड़ती है।

न कैलासे[30] न[31] मेरौ च मन्दरे[32] नैव वर्तते ॥२४॥

यतो नादं[33] शृणोत्येष तत्रैव वर्तते प्रभुः ।

(नारद कहते है):- हे रावण ! ध्यान धर के सुनो, भगवान शंकर के विषयक भक्तजनों की जो यह धारणा है कि भगवान शंकर "कैलास वासी, मेरु पर्वत वासी और मन्दिराचल वासी है अर्थात् कैलास पर्वत पर, मेरु पर्वत पर और मन्दिराचल पर्वत पर ही निवास करते हैं, यह केवल उनकी धारणा ही है, वास्तव में सर्वत्र व्यापक होते हुए भी, नन्दी=शिव का वाहन (नन्दी-गण) तथा तुम्बरु=तान पूरा प्रसिद्ध गन्धर्व (गाने बजाने में परम प्रवीण) ये दोनों जहां कहीं भी अपना नाद अलापते है, निश्चय रखो भगवान् शंकर वहीं सावधान मुद्रा में वर्तते (प्रकट होते) है

---

29) लास्य—पैरों की लय तथा ताल के अनुरूप नाच, कहा जाता है कि इसे पार्वती द्वारा आविष्कृत किया गया है ।

"स्त्रीणां नृत्यम्" (शब्द रत्नावली)

नन्दी द्वारा दावे गये ढोल की थाप पर किया जाने वाला पार्वती का नृत्य ।

30 हिमालय की एक चोटी जहां पर शिव और कुवेर (यक्षपति) वास करते हैं । कई इसकी इस प्रकार भी व्याख्या करते हैं :–

के–जले, लासो—लसनं दीप्तिरस्यइति ।

31) मेरुः-जम्बुद्वीप का मध्य बिन्दु । हिन्दु देवमाला में इसे कमल-पराग कोष के समान माना गया है । जिसके पत्ते द्वीप हैं, सारे ग्रह, उपग्रह तथा नक्षत्र इसकी परिक्रमा करते हैं । ब्रह्मा का निवास स्थान, देवों-ऋषियों, गन्धर्वों आदि की मिलन-भूमि । महाभारत में इसे हिमालय के उत्तर में विद्यमान होने की सूचना मिलती है । किंवदन्ती है, कि यह पर्वत सोने और रत्नों से मण्डित है ।

न काय[34] छेदने नैव न पूजा पठनादिभिः ॥२५॥
शिवः प्रसन्नतामेति यथा[35] नादेन सुव्रत ।
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो नारदो ब्रह्मसत्तमः ॥२६॥
(पूजा पठनैरपि) इत्यपि पाठः

अच्छा आचरण करने वाले हे रावण ! उपरोक्त इस नाद के विकास से भगवान शंकर जैसी प्रसन्नता पाते हैं, वैसी न पूजा करने से, न पाठ आदि पढने से और न शरीर आदि के छेदन से अर्थात् अपने को किसी प्रकार के भी कष्ट देनेसे उन्हे प्रसन्नता तिल भर भी नही मिलती । यह निश्चय रखो । इस प्रकार

---

32) मन्दराचल—एक पवित्र पर्वत, कतिपय देव यहीं पर वास करते हैं अमृत-मन्थन के समय इसी को मदानी के रूप में प्रयुक्त किया गया है ॥

33) नाद—यहां पर विशेषतः नन्दी-तुम्बुरु का नाद और उसी के अनुकूल सुनियन्त्रित लास्य ।

वस्तुतः नाद का पारिभाषिक अर्थ इस प्रकार दिया गया है :-

'नकारं प्राणनामानं दकारमनलविदुः ।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते' ॥

'न' प्राण का तथा 'द' अग्नि का सूचक है । इन दोनों के संयोग से जो ध्वनि प्रसूत होती है, उसे 'नाद' कहने है । योगियों को समाधि-मध्य जो मधुकरी की आनन्ददायिनी गुंजार सुनाई देती है, उसे 'नाद' कहा गया है 'नाद' को मौन की भाषा, का भी नाम दिया गया है । इसे चन्द्रबिन्दु (ँ) आकृतिवाला वर्ण भी माना गया है, जिसका उच्चारण सानुनासिक रूप में होता है ।

वास्तव में बीज, बिन्दु और नाद योग की अन्योन्याश्रित—तीन प्रक्रियायें हैं ॥

रावण को "शिव प्रसन्नता का प्रधान साधन" नाद सम्बन्धी उपदेश देकर परम पूज्य देवर्षि नारद स्वयं वैकुण्ठधाम को पुनः लौट गये ।

छिन्न शीर्षो दशग्रीवो[36] मस्तकैकयुतोऽग्रतः ।
चक्रे नादं महाघोरं भैरवं[37] भैरवेश्वरि ॥२७॥

हे भैरवेश्वरि ! भैरव पत्नी ! देवर्षि नारद के उपदेश को सुनकर दशग्रीव (दस गर्दनों वाला - जिन पर के दस सिर शिव की बलि चढे हुए थे) केवल अगला एक सिर रखा हुआ रावण बड़ा भयङ्कर और डरावनी ध्वनि वाला नाद गुञ्जाने लगा ।

अत्यन्तं मधुरं सूक्ष्मं प्रबोधनकरं परम् ।
तेन नादेन भगवान्महादेवो महेश्वरि ॥२८॥

हे महेश्वरि ! यह नाद, जिस को अष्ट भैरवों ने अत्यन्त मधुर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा सोये हुए को जगाने में समर्थ माना है, महा भैरव (रावण ने) इसी द्वारा महादेव को जगाया ।

---

34) शरीर को कष्ट देने से देवी का प्रसाद नही मिल पाता, शक्तिपात के लिए "अविनाशिनी भक्ति" अपेक्षित है । (पञ्चस्तवी)

35) यहां पर योगियों द्वारा सेवित नाद का वर्णन है (देखिये संकेत नं ३३)

30) दशग्रीवः- दस गरदनों वाला, गरदन के ऊपर ही सिर टिक सकता है। अतः दशमुख-रावण ।

37) भैरवं – भय देने वाला शब्द, बिभेति-यस्मात् तत् रवं गर्जनमिति 'रव' शब्द, आवाज, चीख इत्यादि का पर्याय है ॥

(चैतन्य स्वरूप बनाया) ।।

भैरवेण प्रबुद्धस्तु रावणं प्रददर्श ह ।।२९।।

निदान समाधि से उत्थान पाकर देवादिदेव महादेव अपने सामने रावण को देखकर उसे यूं कहने लगा।

अद्य रावण दौरात्म्य* किं कृतं राक्षसाधिप ।
किं वृणो वद दास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः ।।३०।।

अरे, अपने दस मस्तकों के काटने से निन्दित बनाये शरीर व ले ! राक्षसों के राजन् ! रावण ! आज तुमने यह क्या किया (अपने शरीर को इस प्रकार विकृत बना दिया) ठीक नहीं किया, अच्छा, इस तुम्हारी दृढ भक्ति से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ मैं तुम्हें वह अभीष्ट 'जिसका पाना सब सुर और असुरों के लिए सर्वथा अलभ्य (दुष्प्राप्य) है, देता हूं। बोलो क्या 'वर' पाना चाहते हो। वही वर प्रदान करूंगा।

रावणः

देव देहि परं नाथ भैरवस्य[40] पदं शिव ।
येन नादेन[41] स्वप्तस्त्वं प्रबोधोसि महेश्वर ।।३१।।

---

* दौरात्म्य दुः = निन्दितं, आत्मा—शरीरं यस्य सः ।
(निन्दित शरीर वाला)
दुर्निन्दितं, आत्मा—यत्नः धृतिः, बुद्धिः, शरीरं वा यस्य
दुरात्मनो भावः-दौरात्म्य.
शङ्किताः स्म महाभाग दौरात्म्यात् तस्य चानघ ।
(महाभारत २, १५, ७)

38) योगियों द्वारा सेवित 'नाद' का लक्षण—
मीठा, बारीक से बारीक तथा चैतन्य (प्रबोधन) उपजाने वाला ।

अब रावण अपनी इच्छा इस प्रकार प्रकट करता हुआ बोलता है।
हे जगत् कल्याण कारी मेरे स्वामिन् ! सर्व प्रथम मुझे भैरव का
वह उत्कृष्ट पद दीजिये, जिस पर आरूढ हो मैं वह नाद कर
सकूं, जिससे आप स्वप्न अथवा सुषुप्ति में भी क्यों न हों, पर
मैं आपकी चैतन्यावस्था का ही सदा साक्षात्कार करता
रहूँगा।

ततो मे देहि सर्वज्ञ वरं त्रिभुवनेश्वर।
यथापूर्वमहं नाथ मस्तकैर्दशभिः युतः ॥३२॥

हे त्रिभुवन (भूः भुवः स्वः) के अधीश्वर मेरे स्वामिन्
दूसरे वर से मेरी यह इच्छा पूर्ण कीजिये, जिससे मैं यथापूर्व
(पूर्वयथा-यथापूर्व) जैसा मैं पहिले दस मस्तकों वाला सुशोभित
राक्षसाधिप था, बराबर वैसा ही फिर बन जाऊं, कोई क्षति
मेरे शरीर में न होने पावे।

---

39) यहां पर 'भैरव' शब्द का अर्थ अष्ट भैरवों में से एक लिया जा सकता है
ये अष्ट भैरव शिव की परिचर्या में हर समय उद्यत रहते हैं। ऊपर सं
नं० ३८ में दी गई इस नाद की गुण-गरिमा बताकर 'भैरव' शब्द
यही अर्थ यहां पर संगत प्रतीत होता है।

40) रावण 'भैरव पद' प्राप्त करने की याचना शिव से करता है।

41) जिस 'नाद' के आस्वादन से शिव स्वप्न तथा सुषुप्ति से परे होकर
चैतन्य स्वरूप बन जाता है। तुरीयावस्था शिवदशा कहलाई गई है।
'तुरीयं ते धाम'–इत्यादि। (महिम्नस्तोत्रम्)

तथा मां कुरु तादृक्षं[42] त्वद्भक्ति तत्परं शिव ।
संभवामि प्रीतिकारी दनुजानां[43] महेश्वर ॥३३॥

हे कल्याणकारी सर्वेश्वर ! इसके अतिरिक्त अब तीसरे वर से आप मुझे अपनी भक्त के ऐसे सांचे में ढालिये, जिससे मैं आपकी भक्ति में ही तन्मय (सदा मुझ में आपकी दृढ भक्ति ही ओतप्रोत हो) साथ ही सम्पूर्ण राक्षस समूह का प्रेमपात्र (प्रीति करने वाला) बन जाऊं । प्रभो ! बस यही मेरी आकांक्षा है ।

श्री भैरवः

भैरवस्त्वं महाभाग रागाना[44] मधिपोभव ।
[45]यथापूर्वं दशग्रीवस्त्वं तथाह्यधुना भव ॥३४॥
दैत्यानां प्रीतिमान्विप्र भव नित्यं महामते ।

---

42) तादृग्म्, अथवा तादृक्षम. देखने में (दृश) वैसा ही ।
यदि प्रस्तुत पाठ इस प्रकार दिया जाये :-
'तथा मां कुरुतादृक्षम् ।'
वैसे ही मुझे अ (नहीं) दृक्षम् (दो) बनाइये, भेद से अभेदावस्था तक पहुँचाइये, इसके पश्चात आने वाला पद इस प्रकार के अर्थ के प्रति अवश्य ही इशारा करता है ।

43) दनुज— 'दनु' की सन्तति । कश्यप पत्नी 'दनु' की सन्तान । अमरकोष में इस 'दनुज' को 'असुर' का पर्याय माना गया है । दैत्य, राक्षस, असुर इत्यादि वास्तव में असुरों में प्रचालत जाति भेद का द्योतक है । प्रतीत होता है, कि रावण असुर जाति के अन्तर्गत दनुज उपजाति का समर्थक था ।

44) राग—शिव रावण को 'राग' का अधिप (पोषक) बनाने का वर देते हैं।
'रागोयस्यास्ति संसारे स रागीत्युच्यतेध्रुवम्' (देवी भागवत)

(रावण की इच्छापूर्ति करते हुए श्री भैरव फिर रावण से कहते हैं अरे अच्छे भाग्यों वाले रावण, चिन्ता न करना, देखो तुम्हारी तीनों इच्छायें तुम्हें इस प्रकार प्राप्त होंगी :-

सर्व प्रथम तुम रागों का राजा (रागराट्) बनजाओगे, दूसरा तुम निः संशय यथा पूर्व (जैसे तुम पहिले दशकन्धर थे, बराबर वैसे ही फिर अब दस सिरों वाला) बनजाओगे, तदनन्तर अरे बु बुद्धि वाले रावण, तुम सम्पूर्ण राक्षसमण्डल (दैत्य हो या दनु का प्रीति वर्धक बन जाओगे ।

इति प्राप्तवरो दैत्यो रावणो लोक कर्षणः । ३५॥
मतिं चकार दैत्यानां स तदा[46] सुख हेतवे ।
मुनीनां मानवानां च देवानां कदनं महत्[47] ।
चक्रे घोरतमोरूपमाश्रित्य बल[48] दर्पितः ॥३६॥

इस प्रकार महादेव से अभीष्ट वर (मनोवाञ्छा) प्राप्तकर लोककर्षण (लोगों का कष्टदाता) अतः अपने नाम का सार्थक,

---

सांसारिकता, विषय–वासनाओं के प्रति जो अनुरक्त हो, अतः राग विराग का विपर्यय है। राग में रञ्जन् की अधिकता है, ससार के प्रति आसक्ति को राग नाम दिया है, नश्वरता के प्रति मोह होने के कारण "दुः बहुविधं तस्य" इत्यादि उसे नानारंगी दुःखों का सामना करना पड़ता है। रावण चूंकि आसुरी वृत्ति का था, अतः शिव ने उसके स्वभावानुकूल उसे 'रागी' होने का वर दिया।

45) पहले तुम जैसे थे, वैसे ही अब भी बनो। इस से अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार तुम्हारे दस सिर पहिले थे, वैसे ही वे अब भी हों।

(द्रष्टव्य श्लोक न० २७, टिप्पणी न० ३६)

46) (दूसरा पाठ—मतिं चकार दैत्यानामसत दासुख हेतवे)-
असतदा-जो नश्वरता देनेवाली हो, वैसी बुद्धि। सांसारिक भोगों की पूर्ति ही दैत्यों का लक्ष्य था।

बनाता हुआ रावण अब सब दैत्यों (अपने बरादरी वालों राक्षसों असुरों, दानवों) की भलाई (सुख प्राप्ति के लिए) नई नई योजनायें रचाने लगा, तथा दूसरी ओर घोरतम (भयङ्कर) रूप धारण कर अपने उच्छृङ्खल बल से घमण्डी हो सब ऋषियों, मुनियों, देवताओं तथा मनुष्यों का नाश (बरबादी) करने पर उतारू हो गया।

धर्मसंस्थापनार्थाय साधूनांरक्षणाय[49] च।
राक्षसानां वधार्थाय भगवान्भूतभावनः[50]॥३७॥
जातो त्रेतायुगे[51] पुत्रो राज्ञो दशरथस्य वै।
गृहे पूर्ण कलारूपः[52] कौसल्यानन्दवर्धनः॥३८॥

---

47) दूसरा पाठ—मननशील अध्यात्म वादियों मनु की सन्तति तथा स्वर्ग में वास करने वाले सुरों।

48) इस वर के बल से घमण्डी, उच्छृङ्खल।

49) द्रष्टव्य—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ७-८।

50) भूतभावनः— भूत—सप्राण व्यक्ति-देव, मानव, पशु, वनस्पति इत्यादि 'भूतानि – क्षित्यादीनि, भावयति - जनयति।
जो पांच भूतों – पृथ्वी इत्यादि का जनक है।
भूतभावन का अर्थ इस श्लोक से पूर्व दियेगये श्लोक के प्रसंग में देवों, मानवों तथा अन्य प्राणियों का स्रष्टा तथा उनके लिये कल्याण प्रद, भूतेश, (द्रष्टव्य - श्रीगीता, अध्याय १० श्लोक १५)
शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु को भी इसी नाम से पुकारा गया है
(हरि वंश पुराण)
अथवा जो भावयति- जानाति जानता है
भूत, भविष्य तथा वर्तमान – त्रिकालज्ञ।

(रावण अपनी राक्षसमर्यादानुसार) जब धर्म का समूलोच्छेदन तथा सब प्राणियों का संहार करने लगा, उन्हे नाना प्रकार के कष्ट देने पर उतारू हुआ, तो उनकी यह शोचनीय दशा देखकर भगवान् भूतभावन (त्रिकालज्ञ) से न रहा गया, उन्होने स्वयं कथित (यदा यदाहि धर्मस्य० गीता जी के श्लोक ७ अध्याय ४) प्रतिज्ञानुसार पुनः धर्मस्थापन, साधुओं की रक्षा तथा राक्षसों का सर्व संहार करने के लिए सत्ययुग के दूसरे युग त्रेतायुग में अयोध्यापति महाराजा दशरथ के घर कौशल्या माता के गर्भ में, सम्पूर्ण कलाओं के प्रतिमूर्ति श्री रामचन्द्र के अवतार रुप जन्म धारण किया।

श्री रामो जगतां नाथः सीता माया तथेश्वरि ।
रावणस्य वधार्थाय भूभार हरणाय च ।।३९।।
गतो वानर[53] संयुक्तो लंका प्रति महामतिः[54] ।
युद्धं चकार समुहत्सप्तम्यां[55] वानरैः युनः ।।४०।।

51) कृत (सत्ययुग) के बाद आनेवाला युग त्रेता, इस युग का विस्तार १,२९६,००० मानव वर्ष माना गया है।

52) पूर्ण कलारूप:- सब चौसठ कलाओं की प्रतिमूर्ति। 'पूर्ण का अर्थ— सर्वशक्ति मान' भी किया गया है, (महाभारत xiv २०, २८)
'शिव' के अर्थ में भी 'कला' शब्द का प्रयोग हुआ है
(महाभारत xiii १७, १४०)
'सर्वशक्तिमान-शिव' भी इस पद का अर्थ हो सकता है।
शैवाचार्यों ने 'कला' को 'प्रज्ञा' समझा है (पंचस्तवी v १७)
'पूर्णचैतन्य स्वरूप' भी इस पद का भाव हो सकता हैं।

53) 'वानर' शब्द को प्राय: कपि अथवा बन्दर का समानार्थक समझा गया है, सम्भवत: विकासवाद (डार्विन) के अनुसार यह वन्य-जाति अभी भी

हें भैरवेश्वरि ! तो समय पर दुष्ट रावण को संसार से मर मिटाने तथा पृथ्वी माता को भार हीन करने के लिए, त्रिभुवन के स्वामी महामति श्री रामचन्द्र जी माया-स्वरूपा सीता जी को आधार बनाकर, वानरों की महती सेना का सहाय लेकर रावण पुरी लङ्का पर प्रस्थान कर गये। और अश्विनशुक्ल सप्तमी के दिन वहां पहला घोर युद्ध (आक्रमण) किया।

मेघनादादिकान् हतान् रावणो भयविह्वलः।

मन्दोदरी[56] प्राह ततः कथं मृत्युंव्रजेदयम ॥४१॥

वानरों का रूप और स्वभाव धारण किये हुए थी' ऐसा भी सम्भव है कि यह 'वानर' शब्द किसी विशेष जाति का द्योतक रहा हो, जैसे नर जाति, वानर जाति, राक्षस जाति इत्यादि। इस जाति - संघर्ष में नरों को वानर जाति ने राक्षस-जाति के विरुद्ध सहयोग दिया।

'वा' शब्द के अनेक अर्थों में 'वात' पवन भी इसका एक अर्थ माना गया है, प्रतीत होता है कि नरों की अपेक्षा यह जाति अधिक वेगगामिनी थी, अतः इसे 'वानर नाम दिया गया, हनुमान को वायुपुत्र की संज्ञा सम्भवतः इसी कारण दी गई हो। "वाति-वायुः" (शब्द कल्प द्रुम)

यदि इस प्रकार का अनुमान किया जाये, तो वानरों की भक्ति बुद्धि और वीरता सहज ही समझ में आ सकती है।

54) महामति :- यहां पर श्री राम का विशेषण हैं, बुद्धि, विवेक का आदि तथा अन्त, विष्णु को -मति पति' की संज्ञा भी दी गई है।

(मन्यतेऽनया, इति मतिः,--- अमर कोष)

55) सप्तमी की तिथि : आश्विन शुक्ल पक्ष की।

राम रावण युद्ध का श्री गणेश इसी दिन को हुआ।

56) राक्षसाधिपति रावण की चहीती महिषी— अपने शील तथा बुद्धि विकास के कारण उसे पांच सती—साध्वी नारियों में गिना गया है। अन्य चार नारियों में अहल्या, द्रौपदी, सीता और तारा (सुग्रीव

इस प्राथमिक युद्ध में ही महा पराक्रमी-मेघनाद आदि वीर पुत्रों को मरे हुए देखकर भावी-मृत्यु भय से व्याकुल रावण अपनी पत्नी मन्दोदरी से बोले, प्यारी अब तुम ही बताओ, इस राम की मृत्यु किस प्रकार होनी सम्भव है ।

मन्दोदरी :

शृणु रावण वक्ष्येहं प्रीत्योक्तं नारदेन हि ।
रामो मनुष्यतां[57] प्राप्तो भगवान् भूत भावनः ॥४२॥
श्यामः श्यामाम्बरो नित्यं श्यामा पूजन तत्परः ।
लंकां संप्राप्य सीतां च राज्यं दत्वा विभीषणे ॥४३॥
पुष्पकेन विमानेन गृहान्गच्छत्यसौ पुन ।

पतिव्रता नारियां में प्रमुख मन्दोदरी अपने पति रावण से स्त्रीधर्मोचित आचार-विचार से इस प्रकार कहती है ।

पत्नी) हैं, इन नारियों को विवाहिता होकर भी 'कन्याओं की तरह पवित्र माना गया है । मन्दोदरी– मय दानव' की पुत्री तथा इन्द्रजित की माता थी । "मन्दं उदर यस्या सा" जो अन्य राक्षसों की तरह केवल पेट भरने को ही श्रेय नही समझती थी, उस में शरीर की भूख की अपेक्षा आत्मोन्नयन की मात्रा अधिक थी ।

प्रतीत होता है कि मन्दोदरी रावण के अवचेतन के उज्ज्वल पक्ष की प्रतीक थी ।

57) भगवान् विष्णु के अवतार श्री राम मनुष्य योनि में ।इस अवतार वाद की समीचीनता श्री गीता में सज्जनों केपरित्राण तथा दुर्जनों के विनाश के रूप में दर्शाई गई है । (श्री गीता जी iv, ७-८)

मेरे प्रिय पति रावण ! सुनिये, मैं तुम्हे वह समाचार सुनाती हूं जो बहुत वर्ष पहिले देवर्षि नारद ने बड़े प्रेम से मुझे कहा है। उनके कथन का सारातिसार यह था, कि संसार के कल्याणकारी भगवान् भूतभावन (त्रिकालज्ञ) ही श्री राम नाम से भू-मण्डल पर मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए हैं। श्याममूर्ति, श्याम वर्ण वस्त्र धारण किये हुए वे श्यामा (कालिका) देवी के पूजन में रत (सदा तन्मय) रहते हैं। समय पर वे ही भगवान् लङ्का में आजायेंगे, यहां लङ्का के राज्य पर विभीषण को अभिषिक्त करेंगे, और स्वयं 'पुष्पक विमान' द्वारा परम विभूति सीता जी को साथ ले अपने घर (अयोध्या) को वापिस लौटेंगे।

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन राज्यंदेहिविभीषणे ॥४४
सीतां रामाय त्वं देहि वयं यास्याम भक्तपम्।
श्री शम्भुं परमेशानं प्रणतार्ति हरं परम्[58] ॥४५॥
तपसा तोषयिष्यावः शिवं परमकारणम्।

इसलिए हे नाथ ! यदि मेरा कहना अनुचित न हो आप सब बातों को छोड़कर पूरे ठाठ बाठ से भाई विभीषण को लंका का राज्य सौंपिये, और रामचन्द्र जी से बलात् ली हुई उसकी स्वधर्मपत्नी सीता जी उसे वापस स्वयमेव प्रसन्नता से हवाले कीजिये, ताकि सर्व चिन्ता से निवृत्त हो हम भक्तरक्षक भगवान्

58) परम्— सब से ऊपर, श्रेष्टतम, - सर्वोत्कृष्ट।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥
(मनुस्मृति)

शंकर की शरण लेगें। भगवान् शंकर देवादिदेव महादेव आशुतोष हैं, शरण आये हुए की भवबाधा मिटाने में वे सर्वेसर्वा है, हम उन्ही संसार के आदिकारण शिव को तपस्या से अपनायेंगे (सन्तुष्ट करेंगे)

स एव देवो भगवान् प्रसन्नः स्याद् सदाशिवः[59]॥४६॥
रामं गृहे गते नाथ लंकां प्राप्स्याम जीवनात्।

हे नाथ! तपस्या द्वारा प्रसन्न होने पर वही परमदेव भगवान शिव जो भक्तों के लिए सदाशिव (सर्वदा मंगलदाई) है, उनकी कृपा से हम पुनः जीवनपर्यन्त लङ्का का निष्कण्टक राज्य प्राप्त करेंगे, दूसरी ओर उस समय तक श्री रामचन्द्र जी भी अपने घर (अयोध्या) को चले गये होंगे।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मन्दोदर्या मुखाम्बुजात्।
निराहत्य गतः स्थानं यत्र देवी निकुम्भिला[60]॥४८॥
मन्दोदरी समं तत्र पूजां चक्रे स रावणः।

---

59) सदाशिवः—सर्वदा मङ्गलदायी, शुभ तथा स्वच्छ, सत् और सुन्दर का प्रतीक।

शैवों के अनुसार 'सदाशिव' की व्याख्या इस प्रकार की गई है:
"पाशमुक्तः---सदाशिवः"। (कुलार्णव तन्त्र)॥
आणव, कार्म तथा मायीय मलों, पाशों से विमुक्त–चैतन्यावस्था।
शैवधर्म पांच कारणों में सदाशिव को स्थायी आनन्द-तत्व स्वीकार करता है। अन्य चार तत्व 'ब्रह्म', विष्णु, रुद्र तथा ईश्वर हैं॥

60) निकुम्भिला—वह स्थान अथवा मण्डप जहाँ आहुति दी जाये, लंका के पश्चिमीय द्वार पर बनाया गया एक मण्डप, जहां यज्ञ तथा अनुष्ठान्

बस फिर क्या हुआ, परम हितैषिणी साध्वी मन्दोदरी के मुख कमल से इस परमोपयोगी सुखद संवाद को सुनते ही मन्द-भाग्य रावण पूरी तौर उस पर झपटा और उसे धिक्कारा। झट पट स्वयं देवी निकुम्भिला (भद्रकाली के) मण्डप पर चला गया और वही पर स्वधर्मपत्नी मन्दोदरी-समेत उसकी पूजा करनी आरम्भ की।

उवाचशनकैः वाक्यं राजा मन्दोदरीं प्रति ॥४६॥
हे मन्दोदरि ! सुश्रोणि ! रामश्चेद्भगवान्स्वयम् ।
श्यामायाः पूजने सक्तस्तदाह्वावाह्यामि तम् ॥५०॥

पूजा के दौरान इन्ही स्वधर्मपत्नी मन्दोदरी से अपने मानसिक भाव प्रकटाते हुए राजा रावण बोले 'मन्दोदरी'! हां आपके कथानानुसार राम यदि स्वयं भगवान् हैं और महादेवी श्यामा जी के पूजन पर आसक्त (पूरे लगे हुए) है, तो अच्छा यही है कि मैं उसे (राम जी को) यहां आने का निमन्त्रण दूंगा।

आगातश्चेद् सानुजश्च स हनूमाँस्तथा परैः ।
बलिं दास्याम्यहं देव्यै सहसा चानुगैः सह ॥५१॥

और ज्यों ही राम छोटे भाई लक्ष्मण तथा हनुमान् के समेत यहां आजायेंगे, तो झटिति मैं उसे सर्व परिवार समेत देवी की बलि चढाऊंगा (सब को देवी पर न्यौछावर करूंगा)।

किये जाते थे, कई विद्वानों के मतानुसार यह लंका के पश्चिम में स्थापित भद्रकाली की प्रतिमा है, देवी शब्द के प्रयोग से यही अर्थ संगत जान पडता है। (वाल्मीकि रामायण—युद्धकाण्ड)

तत आवाह्य श्रीरामं रावणोराक्षसाधिपः ।
रामः प्रादुरभूत्तत्र पूजा मण्डपमध्यगः ॥५२॥

मन में ऐसा पूर्ण निश्चय कर राक्षसों के राजा रावण ने श्री रामचन्द्र को वहां पर आने के लिए अपने पूर्ण बल से आवाहन किया। रावण अभी श्री राम का आवाहन करता ही था कि भगवान श्री राम भद्रकाली के पूजा मण्डप पर प्रादुर्भूत हो गये।

प्राह रामं महादैत्यो रावणो घोर दर्शनः ।
सीतां त्यज व्रजगृहं यदि जीवितुमिच्छसि ॥५३॥
नान्यथा त्वं बलिविधौ उपहारं तनोम्यहम् ।
श्रीश्यामायाः पादुकायां प्राह राजीवलोचनः ॥५४॥

बस भगवान श्री राम के वहां प्रादुर्भूत होने पर वह भयानक आकृति दैत्येन्द्र रावण झट श्री राम से बोला, "अरे ओ राम! निश्चय जानो, यदि तुम अपना जीवन चाहते हो, तो तुम्हारे लिए यही उपयुक्त है कि तुम अपनी धर्मपत्नी सीता को यहीं (लङ्का में)छोड़कर अपने घर का मार्ग ले लो (यहां से भाग जाओ) नही तो मैं तुम्हें अभी अभी बलि के रुप में देवी को भेंट चढ़ाऊंगा।"

भो भो दुष्ट दुराचार किं व्रजाम गृहं प्रति ।
सीतां गृह्णामि श्री श्यामां गृहीत्वा त्वांनिपात्यच ।५५।
लंकां दास्यामि ते भ्रात्रे भक्ताय सुहृदाय मे[61] ।

---

61) सुहृद्—विनयपूर्ण हृदय वाला मित्र सहयोगी। यहां पर रावण के भाई विभीषण के प्रति इशारा है।

बस रावण का इतना ही कहना था, तो कमलपत्र जैसे नेत्रों वाले श्री राम सहसा बोले :-

अरे ओ ! दुष्ट, दुराचारी रावण ! ध्यान धरके सुनो, तुम क्या बकते हो, मैं महामाया श्री श्यामा जी के चरण कमलों की पादुका (खड़ाऊं) को साक्षी रखकर तुम्हे सुनाता हूं, मैं अवश्य-मेव अपने घर जाऊंगा, पर पहले मैं तुम्हारा सर्वनाश करूंगा, अपने सहयोगी और प्रियमित्र तुम्हारे भाई विभीषण को लङ्का के राज्य पर निष्कण्टक अभिषिक्त करूंगा, जगन्माता श्री श्यामा जी को यहा से लेकर सतीसर - कश्मीर में विराजमान करूंगा, तब फिर स्वधर्मपत्नी सीता जी को साथ लेकर हम सब अपनी भूमि (अयोध्या) को जायेंगे।

इति श्रुत्वा वचः क्रोधा दष्टम्या[62] मर्धरात्रिके ॥५६॥
खड्गं निकृष्य श्रीरामं प्रति दुद्राव च्छेदितुम् ।

यह दिन अश्विन शुक्ल अष्टमी का था, और समय अर्ध-रात्रि का, इसी समय श्री रामचन्द्र जी की यह कटूक्ति सुनकर क्रोध से दग्ध हो रावण म्यान से खड्ग खींचकर झटिति श्री राम पर आक्रमण करने को दौड़ पड़ा ।

तस्मिन्नवसरे देवी श्री श्यामा रावणं प्रति ॥५७॥
प्रहस्य क्रोधताम्राक्षी मेघ गम्भीरया गिरा ।

---

62) अष्टम्याम् —आश्विन् शुक्लपक्ष अष्टमी, जिसे दुर्गा-अष्टमी भी कहा जाता है ।

उवाच जगतां धात्री धिक् त्वां हे राक्षसाधम ॥५८॥
अहं व्रजामि मद्देशे[63] हिमाचल वरे शुभे
[64]सती सरसि कश्मीर वैष्णव[65] व्रत धारिणी ॥५९॥

तो इसी अवसर पर जगज्जननी महामाया श्री श्यामाजी पहले कुछ हंसी, फिर क्रोध से लाल लाल आंखे कर, घने बादलों के गर्जन समान गम्भीर और भयङ्कर वाणी द्वारा रावण से बोली, अरे रे ! नीच राक्षस ! धिक्कार, धिक्कार है तेरे लिए तुम्हें शरम आनी चाहिए, चिल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए, जो तुम ऐसा दुराचरण करने लगे हो। मैं अभी अभी यहां के इस कालिका रूप का परित्याग कर, वैष्णव (क्षीर खण्डाज्य भोजना) व्रत धारण करती हुई शुभङ्कर और सर्वोत्तम अपने मूल निवास स्थान नगाधिराज हिमालय से आवृत सती-सर कश्मीर - घाटी को जाती हूं।

हनुमन्तं ततः प्राह श्री रामो मनुजाकृतिः।
वीरेश वीर हनुमन्सानन्तां श्री महेश्वरीम ॥६०॥
गृहाण गच्छ भद्रं ते[66] कश्मीरं प्रति शीघ्रग।

---

63) हिमालयपुत्री पार्वती (श्यामा) का मूल निवास स्थान।

64) सतीसर–कश्मीर घाटी का सब से पहला नाम था।
(नीलमत–पुराण, ३१-५०)
देवी का यहां शुभागमन नीलमत की इस आस्था के अनुकूल है :
"यैषा देवी उमा सैव कश्मीरा" (श्लोक ३१)

65) वैष्णव व्रत–निरामिष भोजन के प्रति रुचि। वैष्णव व्रत धारियों के लिए खाद्याखाद्य निर्णय पद्मपुराण के पातालखण्ड की दसवीं अध्याय

बस, जगज्जननी के ऐसा कहने पर ही, मनुष्यों का सा रूप धारण किये हुए भगवान श्री राम भक्तशिरोमणि वीर हनूमान को यह आज्ञा दे गये, 'वेगगामी वीरेन्द्र-हनूमान् । तुम अभी अभी इन महामहेश्वरी महादेवी को समेत सपरिवार अनन्त नागराज के, सिर पर धारण कर पूर्ण आराम से कश्मीर की ओर प्रस्थान करो, जाओ मार्ग तुम्हारे लिए कल्याण कारी बने ।'

एवमस्त्वति संपृच्छ्य वीरीशो हनुमान् तथा ॥६१॥
पृष्ठे तच्चरणौ कृत्वा संप्राप्तश्चोत्तरा पथम्[67] ।

"एवमस्तु" जैसे महाराज की आज्ञा हो, इस प्रकार प्रभु की आज्ञा शिरसा स्वीकार कर वायुपुत्र-वीरेन्द्र-हनुमान् महामाया वैष्णवी देवी के श्री चरण अपने पीठासन पर धारण कर गये, इस प्रकार महामाया के सुखासीन अवस्था में हनुमान ने

में स्पष्ट रूप से दिया गया है :- इसमें अन्न, दालें, दूध, खीर, फल इत्यादि ही गिनाये गये हैं ।

(6) 'कश्मीर' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में 'नीलमत-पुराण के २९१-२९२ श्लोक दृष्टव्य हैं ! जिन में :-

अ) 'क:' को प्रजापति कश्यप मानकर उनसे निर्मित देश को कश्मीर कहा गया है ।

आ) 'क' को जल की संज्ञा देकर विष्णु द्वारा इसे निष्कासित करने पर इस देश को 'कश्मीर' का नाम दिया गया ।

67) उत्तरापथ-भारत के उत्तर में विद्यमान प्रदेश ।

(पाणिनी-अध्याय ५, सूत्र २७)

यहां पर विशेष रूप से कश्मीर के प्रति इशारा है । 'उत्तर' का पर्याय 'उत्तम' भी है, अतः उत्तमोत्तम कश्मीर में देवी का प्रवेश स्पष्ट है ।

बिना कुछ विचारे उत्तरापथ (भारत के उत्तर में विद्यमान उत्त-मोत्तम कश्मीर) की ओर प्रस्थान किया ।

श्री रामो रणभूमिं स्वां जगाम नगरं प्रति ॥६२॥
उवाच भ्रातरं वीरं श्वो हतोऽयं भविष्यति
सीतां गृहीत्वा यास्यामोऽयोध्यां सर्व जनार्थिताम् ॥६३

श्री महामाया के कश्मीर जाने पर इधर श्री रामचन्द्र जी रणभूमि के शिविर अपने निवास स्थान पर निकल गये, और वहां प्रिय भाई लक्ष्मण जी को 'प्यारे लक्ष्मण ! अब हम कल (नवमी को) ही दुर्दान्त रावण का संहार करेंगे, सती साध्वी सीता जी को 'जिसके दर्शनार्थ सारे अयोध्या वासी दूज के चन्द्र समान दर्शन के चिराभिलाषी है' लेकर अयोध्या को प्रस्थान करेंगे ।' इस शुभ सन्देश से परिचित किया ।

ततः प्रभाते संपन्ने रावणो भयविह्वलः ।
रणभूमिं गतं रामं प्रोवाच वचनं शनैः ॥६४॥
रामराम महामायी त्यजमानं च जानकीम्
गच्छ त्वं यत्र गत्वा वै जीवितं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥६५॥
नोचेद्गच्छसि त्वं राम युद्धं कुरु मयासह
[68]द्वन्द्वात्मिकं नान्यथैव यदि त्वं वीर उत्तमः ॥ ॥६६॥

---

68) यहां पर द्वन्द युद्ध से अभिप्राय है, श्री राम और रावण अन्य किसी की सहायता के बिना ही आपस में लड़ेंगे ।

दूसरे दिन अभी प्रातः काल हुआ ही था, रावण जो श्री राम के भय से विह्वल (परेशान) था, रणस्थल में चलागया, वहां पहिले ही पहुँचे श्री राम से धीमी आवाज़ में बोला, अरे ओ छली (कपटी) राम ! देखो सीता को यहीं (लङ्का में) छोड़कर अभी कहीं भाग जाओ, यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, ताकि तुम वहीं-कहीं अपने जीवन को स्थिर रख सकोगे, नही तो (यदि नही जाओगे) तो तुम्हें मेरे साथ युद्ध करना पडेगा, और वह भी 'द्वन्द-युद्ध (जिस में अन्य किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा न होती है) अगर तुम्हे अपने में उत्तम वीर होने का अभिमान है ।

एवमस्त्विति रामो वै रावणं प्रोक्तवान्स्वयम् ।
एहि युद्धं करोम्यत्र तिष्ठ त्वं समरांगणे ॥६७॥

रावण की गर्व-भरी बात पर स्वयं श्रीराम 'एवमस्तु' तेरा कहना स्वीकार है, रावण को इस बात से परिचित किया । और कहा रे रावण ! ठहरो मैं आ रहा हूं । तुम समरांगण (युद्ध स्थल) पर 'द्वन्दयुद्ध' के लिए अपने को तैयार रखो ।

प्राप्ते नवम्यां[69] मध्याह्ने रावणो भय कातरः ।
प्राणान्मुमोच श्री रामशस्त्रेणाभिहतोऽसुरः ॥६८॥

---

69) नवम्याम्— आश्विन शुक्ल पक्ष नवमी ।
इसे 'महा–नवमी भी कहा जाता है ।

बस फिर क्या हुआ, जो होना था, हो के रहा, दिन-आश्विन शुक्ल नवमी का था, समय-मध्याह्न, रावण जो भय से कातर था, समरांगन में श्री राम से जुटगया, अन्त में श्री राम के शस्त्र से अभिहत हो, घोराघात न सहनकर प्राण-हीन होकर संसार से चल बसा।

दिव्य दुन्दभयोनेदुः ननृतुश्चाप्सरोगणाः
अवाकिरन् पुष्प वर्षैः रामंत्रिदिवौकसः[70] ॥६६॥
जयेत्युक्तं तदा सर्वैः वानरैः सर्वतो दिशम

बस रावण के मरने कीघोषणा करते ही स्वर्ग में दिव्य बाजे बजने लगे, अप्सरायें जो खुशी में मस्त थी नाचने और गाने लगी। सब देवता प्रसन्नता से फूले न समाते हुए श्री राम पर पुष्पों की वर्षा बरसा गए। साथ ही सब के सब वानरों ने 'श्री रामचन्द्र की जय हो, जय हो' इस जय-घोष की गूंज से दसों दिशायें, यहां तक कि सम्पूर्ण आकाश मण्डल भी भर दिया।

---

70) त्रिदिवौकस:—जिनका निवास तीसरा परमपावन स्वर्ग है देवता।
वेदों में इसे साधारणत: स्वर्ग का पर्याय मानागया है।
(ऋग्वेद ix, ११३,६ इत्यादि)
(अमरकोष—१ कांड, सर्ग २)
स्वर्ग के अनेक गुणों में यह श्लोक दृष्टव्य है :—
नरोगो न जरा मृत्युर्नशोको न हिमादय:।
न तत्र क्षुत्पिपासा च कस्य ग्लानिर्न दृश्यते ॥
(पद्म पुराण—भूखण्ड, अध्याय-१०)

तदा प्रभृति श्री रामः पूर्णिमांया[71] दिवा निशम् ॥७०॥
यात्रां करोति विधिवत् स सीतां सानुजः हरिः

उस दिन से लेकर बराबर आज तक पूर्णमाशी पर रात और दिन विष्णु के अवतार श्री राम सीता तथा अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ विधिवत इस महाराज्ञी के अस्थापन की यात्रा करते हैं ।

मन्दोदर्याथ चाष्टम्यां नवम्यां वा विभीषणः ॥७१॥
हनूमांस्तु सदैवात्र वर्तते द्वारपो बली ।

इसी प्रकार मन्दोदरी अष्टमी पर विभीषण अष्टमी अथवा नवमी (इस अस्थापन पर पूजा करते हैं), और महाबली हनूमान सदा द्वार की की रक्षा के निमित यहीं पर वास करता है ।

पर्वस्वेतेषु संपूज्य जनैः सर्वार्थसिद्धये ॥ ७२॥

श्री भैरव भैरवी से कहते हैं, प्रिय भैरवी ! अब यह सब इतिवृत सुनकर प्रत्येक भक्तजन को सर्वार्थसिद्धि (अपनी सब प्रकार

जहां न रोग, न बुढापा, न मृत्यु, न शोक और न सर्दी गर्मी का खटका हो, वहां न भूख और न प्यास ही है, और किसी की भी हानि नहीं होती ।

71) पूर्णमासी—आश्विन शुक्ल पक्ष की,
प्रतीत होता है, कि रामरावण युद्धम्, आश्विन शुक्ल सप्तमी से आरम्भ हुआ और नवीन राज्य-प्रबन्ध पूर्णमासी तक समाप्त हुआ ।

की सफलता पाने के लिए) इन पर्व दिनों पर भगवान् श्री राम, महामाया-वैष्णवी-देवी-महाराज्ञी की यथाविधि पूजा (ध्यान धारणा आदि) अवश्य करनी चाहिए। यही कारण है भक्तजन विशेष करके, अष्टमी-नवमी और पूर्णमासी पर देवी का दर्शन पाने के लिए यहां (तूलमूला) आते है।

इत्येतत् कथितं देवि
राज्ञः प्रादुर्भावं शिवे।
यस्य श्रवण मात्रेण
जायन्ते सर्व सिद्धय:[72] ॥७३॥

श्री भैरव कहते है हे देवि ! मैंने आपको प्रचुर प्रेम तथा पूर्ण आग्रह से 'महामाया-महाराज्ञी' प्रादुर्भाव का आद्योपान्त यथावत् वर्णन किया। अब निश्चय जानो, इसके पठन और श्रवण मात्र से भक्त लोगों की सर्वसिद्धियां (अपनी सारी कामनायें) उन्हें हस्गत होंगीं।

इति श्री भृङ्गीश संहितायां श्री भैरव भैरवी संवादे 'महाराज्ञी प्रादुर्भावो' नाम द्वितीयः पटलः ॥

---

72) "महाराज्ञी प्रादुर्भाव" के श्रवण मात्र से ही सब सिद्धियां वश में हो जाती हैं। सिद्धियां आठ मानी गई है-अणिमा इत्यादि। सिद्धि का अर्थ सफलता भी है, हर प्रकार की सफलता सुगम हो जाती है, यह अर्थ भी यहां पर संगत है। इस शब्द को असाधारण प्रज्ञा, कला इत्यादि का पर्याय भी माना गया है।

विन्दुस्त्र्यश्रं षडश्रं च वृत्ताष्टदल मण्डितम् ।
वृत्तत्रयं धरासद्म राज्ञी श्री चक्रमीरितम् ॥

बिन्दु :- परिमाण तथा परिधि से परे ।

तिकोण :- तीनगुणमयी तथा इससे अतीत भी ।

षट्कोण :- मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक कुण्डलिनी शक्ति का सजग आरोह

वृत्त :- जगत और जीवन का पारस्परिक अनुसरणशील सम्बन्ध, विश्वमयता

अष्टदल :- पांच कर्मेन्द्रियों सहित मन, बुद्धि अहङ्कार रुपी अष्टविग्रह ।

वृत्तत्रयम् :- तीन लोकों भूः भुवः स्वः की त्रयात्मक गोलाकारिता ।

धरासद्म :- सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्त-र्मनन की आधार-भूमि, भुगृह, से अल
(इस रेखा-चित्र को) **महराज्ञी का श्रीचक्र** कहा गया है

श्री महाराज्ञी भगवत्यै नमः

श्री भैरव और भैरवी जी के शुभ संवाद के आधार पर जगन्माता श्री महाराज्ञी के विशिष्ट 'मन्त्रमय–श्री चक्र' तथा पञ्चदशाक्षर–मूलमन्त्र का सविस्तृत विवरण तथा जाप विधि :-

श्री भैरव उवाच :-

श्री शैलशिखरासीनं भगवन्तमुमापतिम् ।
चन्द्रार्धं मुकुटं देवं सोमसूर्याग्नि लोचनम् ॥१
गजचर्म परीधानं विरूपाक्षं सुराधिपम् ।
गण गन्धर्व यक्षेन्द्र देवासुर नमस्कृतम् ॥२
विहसन्तं जपन्तं च पठन्तं च मुहुः मुहुः ।
उत्थाय प्रणता भूत्वा पर्यपृच्छत भैरवी ॥३॥

प्राचीन कथा के आधार पर–भगवान उमापति भैरवनाथ एक दिन शैलराज हिमालय–पर्वत की एक ऊंची चोटी पर अपना-सिंहासन बिछाये, अपने जटाजूटी मुकुट पर चन्द्रकला को धारण किये हुए, विशाल गजचर्म को पहिने हुए, सूर्य-चन्द्रमा और प्रकाशमान अग्नि रूप (त्रिनेत्रधारी) तीन नेत्रों वाले, इस प्रकार ज्वाज्वल्यमान अतः असहनीयता के कारण भयङ्कर नेत्रों वाले,

सब देवों के स्वामी देवादिदेव महादेव, जिन्हें सब भूत-गन्धर्व-यक्षाधिपति-देव तथा असुर साष्टाङ्ग नमस्कार करते हैं.........

सुख से आसन पर विराजमान थे, कभी २ अपने आप से हंसते थे, कुछ जपते थे, तथा बार बार कुछ पढ़ते थे ।

इतने में (भैरव नाथ की ऐसी अवस्था में) भगवती भैरवी जी वहीं पर उपस्थित हुई, और भैरव रूप अपने प्रिय पति को भक्ति पूर्ण साष्टाङ्ग प्रणाम कर बड़ी विनम्र भाव से इस प्रकार पूछने लगी ।

श्री भैरवी उवाच :-

भगवंस्त्वं परोदेवः सुरासुर नमस्कृतः ।
वेद वेदाङ्ग तत्वज्ञो गुणातीतश्चिदीश्वरः॥४॥
सतत किं जपस्यास्य तत्वं सर्वोत्तमं विभो ।
अद्याप्यविदितं यन्मे तत्वं त्वं वक्तुमर्हसि ॥५॥

हे भगवन् ! यह सब जानते हैं, कि आप सर्वोत्कृष्ट देव है, वेद वेदाङ्गों के परम तत्व को जानने वाले हैं, फिर भी सब गुणों से अतीत, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है, यही कारण है, सुर हो या असुर, सब आपकी शरण आते है, और तुम्हें नमस्कार करते हैं, परं हे विभो ! आश्चर्य की बात है, (शंकरार्ध-शरीरिणी) महादेव की अर्धाङ्गिणी होती हुई भी मैं आपके उत्तमोत्तम तथा उत्कृष्ट उस तत्व से पूर्ण अपरिचित हूं जिसे आप सदा जपते हैं, और जिसका गान भी करते हैं । अब हे प्रभो ! दया कीजिये,

मुझे भी उस उच्चतम तथा उत्कृष्ट तत्त्वज्ञान से पूर्णतया परिचित कर सदा के लिए कृतार्थ करें ।

श्री भैरव उवाच

या देवी निष्कला श्यामा निराभासा निरञ्जना ।
महा श्री षोडशी विद्या या राज्ञीति निगद्यते ॥६॥
स्वयं राज्यप्रदा देवी-विद्या राज्ञी महेश्वरी ।
देवी पञ्चदशा वाणी परंब्रह्म कुटुम्बिनी ॥७॥
नृणां दारिद्र्य नाशाय प्रादुर्भूताद्य भारती ।
॥८॥

तस्याः पञ्चदशी विद्यां गुह्यामविदितां पराम् ।
तां जपामि महादेवीं तत्पञ्चाङ्गं स्मराम्यहम् ॥९॥

उत्तर में अब श्री भैरव नाथ बोलते हैं :- प्रिये ! आप उदास न हो मैं इस विषयक सम्पूर्ण रहस्य तुम्हें सुनाता हूँ, सुनिये, और प्रसन्न मुद्रा में रहिए :-

जगन्माता महादेवी जो सम्पूर्ण ६४ कलाओं से ओतप्रोत है :-

१. निष्कला- बिना 'क' और 'ल' वर्ण के केवल 'ई' रूपा है अर्थात् अपने पञ्चदशाक्षर मूलमन्त्र के पञ्चम बीजाक्षर 'क्लीं' में 'क' और 'ल' वर्णो के रहित केवल 'ई' वाग्देवी' ''सरस्वती' रूपा है ।

२. श्यामा - 'द्वात्रिंशत्यक्षरा श्यामा-महाकाल कुटुम्बिनी' इस भाव से ककाराक्षरात्मिका कालीरूपा है । अर्थात् श्यामा

रूप से २२ बीजाक्षरों के नामोच्चारण से तामसी...
'महाकाली' रूपा है।

३. निराभासा—आभास-इयन्ता तथा अहन्ता के आभास से सर्वथा दूर तुलाकोटि के समान ऊर्ध-अधः गति रहित समभाव में प्रकाशमाण 'श्री महालक्ष्मी रूपा'
दूसरे शब्दों में जो 'शक्तित्रयी-श्री महालक्ष्मी-श्री सरस्वती श्री महाकाली की शक्ति में 'त्रिपुरा, तीन मूर्तियों में एक समान विराजमान है।

४. निरञ्जना (निर्गतमञ्जन - मित्र,अज्ञानम्-इस व्युत्पति से) अज्ञान से दूर ज्ञानमयी तथा ज्ञान स्वरूपा भाव से सर्वत्र समवर्तिनी है, अधिक क्या कहूँ, विशेष कर जो स्वयं—

५. भगवान् शंकर द्वारा निर्दिष्ट महा *'श्री षोडशी विद्या से सर्वथा ओत प्रोत है,—जिसके बारे में यह वर्णन महिमा रूप में गाया गया है।
वही क्षीर खण्डाज्य भोजना, नाना वर्णों से विभूपिता महाराज्ञी जी। जो—

---

*आद्या कुण्डलिनी शक्तिः शक्तिराद्या ततः परा।
निवेशयेत्तयोः मध्ये देबि गोविन्द वल्लभाम्॥
ततस्तु मन्मथं बीजं श्री बीजं तदनन्तरम्।
हृल्लेखा रमयोः वक्त्रे वेदवक्त्रं विनिः क्षिपेत्॥

... ...
अस्याः माहात्म्य मतुलं जिह्वाकोटि शतैरपि।
वक्तुं न शक्यते देवि किं पुनः पञ्चभिः मुखैः॥

७. स्वयं सर्वसम्पदा-ऐश्वर्य और योगक्षेम आदि को देने वाली है।

८. सर्वप्रकार की ज्ञानकला, सिद्धिप्रदात्री 'विद्याराज्ञी' है।

९. पञ्चदश (१५) बीज मन्त्राक्षरों के रूप में ओतप्रोत होते भी अखण्ड ब्रह्माण्ड की परिपालिका 'परंब्रह्म कुटुम्बिनी' है। वही अब जनता के दारिद्र्यादि दुःख निवारण हेतु ज्ञानकला (सरस्वती) रूपा प्रादुर्भूत हुई है।

प्रिये! मैं उन्ही महाराज्ञी के रहस्य तम पञ्चदशाक्षरी (१५ अक्षरों वाले) मन्त्र का जाप करता हूँ, तथा उन्ही के श्री पञ्चाङ्ग का नित्य स्मरण करता हूँ।

श्री भैरवी उवाच

भगवन् करुणाम्भोधे शरणागत वत्सल
या देवी लोकमातेति राज्ञी राज्यप्रदायिनी ॥१०॥
दारिद्र्य हारिणीत्वच्च तत्पञ्चाङ्गं वदस्व मे
तत्वतो देव तन्त्राढ़्यं यद्यहं प्रीयसी तव ॥११॥

अपि प्रियतमं देयं सुतदारं धनादिकम्।
राज्यं देयं शिरोदेयं न देया षोडशाक्षरी ॥

२. श्री बीज माया स्मर योनि शक्तिः तारं च माया कमलाथ विद्या।
शक्तयादि बीजैश्चविलोपमोक्तया श्री शोडशीयञ्च शिव प्रदिष्टा ॥

३. श्री माया मदनो वाणी परा तारं शिवप्रिया।
हरिप्रिया त्रिकूटा सा परा वाणी मनोभवा ॥
... ...
माता लक्ष्मी महाविद्या श्री बीज षोडशी परा ॥ इत्यादि

इस पर भैरवी जी जो प्रियपति के इस उत्तर को और अधिक सविस्तृत सुनने की लालायिता थी, पति से बोली :-

हे शरणागतों के प्यारे ! सब पर दया करने वाले ! दयासागर भगवन् ! जगन्माता महादेवी जो जगत को दारिद्यादि दुखों से रक्षा करती है, योग-क्षेम रूप अलौकिक राज्य सुख से तृप्त करती है, उन्ही देवी महाराज्ञी के जिस पञ्चाङ्ग, का आप सदा स्मरण करते है, उन्ही के उसी पञ्चाङ्ग, तथा ६४ संख्याओं वाले शिवशास्त्रो (तन्त्रों) में विश्रुत, सर्वप्रधान एवं उत्कृष्ट-तत्व-ज्ञान से मुझे भी सर्वथा परिचित कीजिये, यदि आप सत्यतः मुझे अपनी प्रिय पत्नी स्वीकार करते हो ।

श्री भैरव - उवाचः

श्रृणुष्ववहिता भूत्वा पठलं मन्त्रं विग्रहम ।
राज्ञः सर्वस्य भूतं मे रहस्यं देव दुर्लभम् ।१२।
मन्त्रोद्धारं महादेवि राज्ञ्याः मद्धदनोदितम् ।
श्रुत्वा गोपय यत्नेन येन सिद्धिः प्रजायते ।१३।

अपनी प्रिय पत्नी भैरवी के आग्रह से विवश हो श्री भैरव उत्तर में बोलते है :- प्रिये ! चंचल मत हो जाओ, सावधान रहो, और सुनो। जगन्माता श्री महाराज्ञी का सर्वस्व जो उन का शरीर रूप १५ अक्षरों वाला महामन्त्र,[1] देवताओं तक जिस का रहस्य जानना दुर्लप है, आपको सुनाता हूं। साथ ही स्वयं अपने मुंह से प्रकटाये श्री महाराज्ञी के 'मन्त्रोद्धार' से भी आप को परिचित कराता हूँ, किन्तु शर्त यह है, कि इसे पूर्ण प्रयत्न से 'रहस्य (गुप्त) ही रखना, हां, जितना भी इसे गुप्त रख

सकोगी, सिद्धि उतनी शीघ्र प्राप्त करोगी। साथ ही यह भी ध्यान में रखना, यह महाराज्ञी का 'मन्त्रोद्धार' है, जो मैं आप से बोलता हूं, हां, जहांतक हो सके, इसे भी गुप्त ही रखना। क्योंकि 'रहस्यमेतदुत्तमम्–इसके रहस्य में ही उत्तमता है।

मन्त्रोद्धार :–

तारं माया मानलः कामशक्ति
मध्यं चाख्या भगवत्यै च राज्यै।
माया बीजं ठद्वयं देवि राज्ञः
मन्त्रोद्धारो वर्णितो गोपनीयः ॥१४॥

नोट :– यह भगवती का 'मन्त्रोद्धार' है, इसका एक एक शब्द सांकेतिक और पारिभाषिक है, अतः व्यञ्जना गम्य है, साधारण मनुषों द्वारा इसका अर्थ–प्राकट्य, तथा 'ज्ञान-प्राकट्य नितरां कठिन है, अतः इसका यथावत् शब्दोच्चारण ही (वेदों में आर्षः पाठः के सम्मान) पर्याप्त है ॥

श्री भैरव बोलते हैं, प्रिये! अब रहा श्री जगन्माता महाराज्ञी को सर्वोत्तम मन्त्र का अनुष्ठान तथा उसका विधि-विधान

---

1) क) मन्यते–गुप्तं परिभाष्यते – इति मन्त्रः।
(रहस्य में गुरुद्वारा जिसका उपदेश किया जाता है)

ख) 'मननात् त्रायते यस्मात् तस्मात् मन्त्रः प्रकीर्तितः।"
(जिसके मनन से मनुष्य की स्वयं रक्षा होती है, तभी जिसका 'मन्त्र' ऐसा सार्थक नाम पड़ा है)

ग) महाराज्ञी का १५ अक्षरों वाला महामन्त्र :-

ॐ	ह्रीं	श्रीं	रां	क्लीं	सौ	भ	ग	व	त्यै	रा	ज्ञ्यै	ह्रीं	स्वा	हा
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15

जाप, सो भी सुनिए। परं इस प्रकार विधि विधान मन्त्र का एक उच्चारण अन्य करोड़ों मन्त्रों से अधिक फलप्रद होता है।

श्री भैरव उवाच :-

श्री राज्ञी मूलमन्त्रस्य ऋषिः ब्रह्मा समीरितः
गायत्री छन्द ईशानि राज्ञी देवी च देवता ।१५।
माया बीजं शरच्छक्तिः कामः कीलक मीश्वरि
भोगाप वर्ग सिद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।१६।
ध्यान मस्याः प्रवक्ष्यामि सात्त्विकं कामना वहम्
सर्वसिद्धिप्रदे देवि ! मन्त्रकोटि फल प्रदम् ।१७।

सर्व प्रथम शुद्ध आसन पर विराजमान होकर, प्रिये ! श्री महाराज्ञी का सर्वोत्कृष्ट पञ्चाङ्गात्मक–यन्त्र–स्वरूप श्रीचक्र अपने सामने रखिये, पञ्चदशाक्षरात्मक महामन्त्र का तन-मन से स्मरण करे, और इस प्रकार विनियोग ड़ालिये।

किसी छोटे पात्र (अर्घ्य) से पानी निर्माल्य में ड़ालते जाइये और पढ़ते रहिए।

अस्य श्री महाराज्ञी-मूल मन्त्रस्य, ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीं छन्दः, श्री महागायत्री देवता, माया बीजं, शरद शक्तिः, कामः कीलकम्, अत्मनो वाङ्मनः कायोपार्जित पाप निवारणार्थं भोगाप-वर्ग सिद्ध्यर्थे श्री महाराज्ञ्याः पञ्चदशाक्षरात्मक मन्त्र (पाठे-जपे वा) विनियोगः। (इसी का नाम विनियोग है)

फिर- "रां-रीं-रूं-रैं-रौं-रः" इन बीजाक्षरों से पहिले करन्यास (हाथों की शुद्धि) फिर अङ्गन्यास (शरीर की शुद्धि) करे :-

यथा :- (करन्यासः)

रां–अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (दोनों हाथों की सब अङ्गुलियों से अपने अपने अंगूठे को स्पर्श करे)

रीं–तर्जनीभ्यां नमः (अंगूठों से हाथ की पहिली अंगुली का स्पर्श करें)

रूं-मध्यमाभ्यां नमः (,, ,, बीचवाली ,, ,,)

रैं -अनामिकाभ्यां नमः (,, ,, तीसरी ,, ,,)

रौं-कनिष्टकाभ्यां नमः (,, ,, सबसे छोटी ,,)

रः-करतल करपृष्टाभ्यां नमः (दोनों हाथों को आपस में आगे पीछे स्पर्श करें)

(षडङ्गन्यासः)

रां-हृदयाय नमः (दोनों हाथों की अङ्गुलियों से हृदय को स्पर्श करे)

रीं-शिरसि स्वाहा (,, ,, सिर को ,,)

रूं-शिखायै वौषट् (,, ,, शिखा को ,,)

रैं-कवचाय हूँ (,, ,, कानों के लवो को ,,)

रौं-नेत्राभ्यां वोषट् (,, ,, आँखों को ,,)

रः-अस्त्राय फट् (,, ,, चुटकियां बजावे ,,)

(न्यास करके 'पञ्चदशाक्षर मूल मन्त्र–से 'प्राणायाम' करे तदन्तर महाराज्ञी के 'त्रिपदा गायत्री' का ३ (तीन) बार उच्चारण करें)

त्रिपदा गायत्री यह हैं :-

ॐराज्य प्रदायै विद्महे, पञ्चदशाक्षयैधीमहि, तन्नो राज्ञी प्रचोदयात् ॥३॥

फिर दोनों हाथ जोड़कर महाराज्ञी भगवती की ओर ध्यान लगाकर यह श्लोक पढिये :-

(ध्यान धारना के लिए भगवती का प्रतिबिम्बचित्र-पुस्तक के आदि पृष्ट पर संलग्न है)

उद्यत् दिवाकरसहस्त्ररुचिं त्रिनेत्रां
सिंहासनोपरिगतामुरगोपवीताम् ।
खड्गाम्बुजाढ्य कलशाममृतपात्र हस्तां
राज्ञीं भजामि विकसद्वदनारविन्दाम् ॥१८॥

इस का अर्थ इस प्रकार है :-

जगन्माता महामाया जो एकसाथ उदय किये हुए प्रातः कालीन हजारों सूर्यों की सी आभा (दीप्ति) लिये हुए, 'वह्नि-त्रयार्क रजनीश' सूर्य चन्द्रमा और अग्निदेव जैसे प्रकाशमान तीन नेत्रों को धारण किई हुई, सटाओं से सुशोभित सिंह के स्कन्धासन पर विराजमान (शेर सवार), यज्ञोपवीत के रूप में सर्पराज को पहिनी हुई, खड्ग, विकसित कमल, जलपूर्ण घट, कलश तथा अमृतपूर्ण पात्र को अपने मनोहर एवं सुशोभित चार भुजाओं में धारण किई हुई है। एवं परिपूर्ण खिले एवं प्रकाशमान कमल के समान सुन्दर मुख की कान्ति को धारण करने वाली भगवती-महाराज्ञी की मैं (शरणागत भक्त) तन, मन से ध्यान करता हूँ।

प्रस्तुत 'महाराज्ञी ध्यान' का कुण्डलिनी शक्ति के प्रतीक के रूप में यह अर्थ भी संभव है।

उगते हुए अरुणाभ सूर्य की हजारगुणी लाल कान्ति से समन्वित[1] तीन नसों इड़ा, पिंगला सुषुम्ना का नेतृत्व करने

---

1) कन्द से ब्रह्मरन्ध्र तक जागृत होकर जाने वाली कुण्डलिनी का रक्तवर्ण (लाल रंग) माना गया है।

वाली[2] सिंहवाहिनी दुर्गा के रूप में दुर्गति (आधि-व्याधि) से ऊपर असम्पृक्त,[3] उ, र, ग (कुम्भक-रेचक-और पूरक) को गले[4] लगाने वाली (अ-से क्ष तक) वर्णों को खड्गाकार में तथा प्रशस्त 'अंबू' छन्द द्वारा परिमित करने वाली[5] कुण्डलिनी शक्ति को प्रेरणा देकर हाथ में अमृतपात्र धारण करने[6] वाली मैं राजराजेश्वरी महाराज्ञी के ऐसे रूप का चिन्तन करते हुए उसके विकसित[7] कमल समान मुख का ध्यान करता हूँ।

इस प्रकार समाधान चित्त से भगवती महाराज्ञी के ध्यान में मग्न हो :-

'ॐ ह्रीं श्री-रां-क्लीं-सौ-भगवत्यै राज्यै ह्रीं स्वाहा'

इस पञ्चदशाक्षर मूलमन्त्र का जाप अधिक नही तो, एकमाला (१०८) अवश्य किया करे।

जाप के अन्त में फिर मूल मन्त्र से प्राणायाम करें। और विनियोग की तरह अर्घ्य (किसी जल पात्र) से जल निर्माल्य में डालते हुए पढते जाइये :- [तर्पण करे]

---

2) इन तीनों नसों से गुजरने वाली।

3) दुर्गा दुर्गति नाशिनी, स्वयं इससे ऊपर, भक्तों को अभय देने वाली।

4) प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनि का आवाहन तत्पश्चात जागरण।

5) वर्णमाला की अधिष्ठात्री, वर्णों का खड्गबन्ध (तलवार के आकार में एक के बाद दूसरे को रखना) और इन से निर्मित्त बीजाक्षरों को 'अँबू' नामक छन्द में संयत करने वाली।

6) अमृतवर्षिणी कुण्डलिनि के प्रति संकेत।

7) सहस्रार का विकास।

अनेन श्री महाराज्ञी पञ्चदशाक्षरमन्त्र-माला (जपेन-पाठेन वा) आत्मनो वाङ्मनः कायोपार्जितपाप निवारणार्थं भोगापवर्ग सिद्ध्यर्थे भगवती अमा, कामा, चार्वङ्गी, टङ्कधारिणी, तारा, पार्वती श्री महाराज्ञी भगवती, महा त्रिपुर-सुन्दरी प्रीयन्तां प्रीताः सन्तु ।

अर्घ्य के शेष जल से अपने आप को मार्जन करे (जल छिडके)

अन्त में श्री भैरव 'पञ्चदशाक्षर मूल मन्त्र' के जाप के उपलक्ष्य इस प्रकार बोलते हैं :-

श्री भैरव-उवाच :-

नास्यान्तरायो न क्लेशो न विपर्यय धीः शिवे ।
सर्वसिद्धिप्रदो देवि मन्त्रोऽयं भाग्य वर्धनः ।१९।
मन्त्र मुत्कीलये द्देवि ततः संजीवयेन्मनुम् ।
सिद्धि मन्त्रं जपेद्देवि ततः संपुटितं चरेत् ।२०।
ततो मन्त्रोथ मीशानि साक्षात्सिद्धि प्रदो भवेत् ।
यन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि सर्वाशा परि पूरकम् ।२१।
सर्वार्थ साधकं चक्रं सर्व सम्मोहनं तथा ।
... ... ।२२।

हे प्रिये ! स्मरण रहे, महामाया महाराज्ञी का यह पञ्च-दशाक्षरी मन्त्र सब मन्त्रों में महान् एवं उत्कृष्ट मन्त्र है । इसके यथावत् जप-विधान में कोई भी विघ्न, किसी भी प्रकार का क्लेष तथा किसी भी विपरीत बुद्धि का समावेश नही होता है, परञ्च यह मन्त्र अष्ट सिद्धियों का प्रदाता तथा सर्व सौभाग्य को बढाने वाला है ।

प्रिये ! सुनो इसका नाम सिद्ध-मन्त्र है इस मन्त्र का उत्कीलन,[1] संजीवन[2] तथा संपुटन[3] करके यदि इसका जाप किया जाये, तो परोक्ष में क्या, साक्षात् रूपेण यह सर्व सिद्धि का प्रदाता है।

---

१) उत्कीलन—कील धातु से, जिसका शाब्दिक, व्यवहारिक, अर्थ बान्धना (गांठ देना) इत्यादि है, परन्तु कर्मकाण्ड में इसका अर्थ आराध्य के मन्त्र को कील की तरह अपने आप में गाड़ना है, इसे आत्मसात् करना है, इसीलिए हर एक पूजा पद्धति में कीलक - मन्त्र का आदिस्थान है, यही अन्ततः आराधक के लिए 'कवच' बन जाता है, तभी तो 'कीलक' के बाद 'कवचम्' का भी कहीं २ पर प्रयोग हुआ है।
(दृष्टव्य–दुर्गासप्तशती)

२) संजीवन — का पारिभाषिक अर्थ, इस प्रसङ्ग में मन्त्र को जीवाधान देना हैं, जैसे पूजा के समय मन्त्र द्वारा प्रतिमा को जीवाधान से अभिषिक्त किया ज़ाता है। मन्त्र के निर्जीव अक्षरों में निहित उनके चमत्कारिक प्रभाव को उजागर करना है।

३) संपुटन—समग्र रुप से हस्तान्तरित करने को कहेंगे। संपुट पाठ की विधि को सब जानते हैं। इस तरह मन्त्र को सर्व प्रथम अपने आप में उतारना है। तदन्तर इस में जीवन फूंकना है और तत्पश्चात यह स्थाई और परिपूर्ण रूप से आराधक की भाव-भूमि सजोने में सफल हो सकेगा। इसी त्रयात्मक उपचार विधि से मन्त्र सिद्ध होकर सिद्धि का संदेश वाहक बन पायेगा। मन्त्र को जब तक इस मानसिक अनुशासन से सिद्ध न किया जाये, तब तक इसकी उपादेयता संदेहात्मक बन पायेगी।

प्रिये ! सर्व प्रकार की आशाओं को पूर्ण करने वाले, सब को मोहने वाले इस यन्त्र रूप सर्वार्थ-साधक चक्र के बारे में इस का पूर्ण विशुद्ध विवरण इस प्रकार है, सुनो :-

बिन्दुस्त्र्यश्रं षडश्रं च वृत्ताष्टदल मण्डितम् ।
वृत्तत्रयं धरा सद्म राज्ञी श्री चक्र मीरितम् ॥२३॥

यह श्लोक महाराज्ञी के रेखात्मक श्री चक्र के यथावत् भाव का संवेदक है ।

इसमें केन्द्रात्मक एक बिन्दु है, बिन्दु एक तिकोण से घेरा हुआ है तिकोण षट्कोण के अन्तर्गत है, जो एक वृत (गोलाकर) से आवेष्टित है, वृत्त अष्ठदल का अधार बना है, परं अष्टदल तीन वृत्तों से आच्छादित होकर भी सबके उपर एक भूग्रह से विराजित है ।

(संलग्न चक्र इसका मूर्तिमान् प्रमाण है ।)

इसका विशुद्धविवरण (अर्थात् सम्पूर्ण चक्र मण्डल में स्वयं महा-राज्ञी और उसके प्रिय परिवार ने कहां कहां अपना स्थान अलङ्कृत किया है, यह सब) पुरः लिखित इन श्लोकों से यथावत् दृश्यमान् है :-

पञ्चाङ्ग मस्य देवेशि शृणु वै ह्यागमोद्धृतम् ।
यस्य श्रवण मात्रेण पूजायुत फलं लभेत् ।२४।

गणेशो भीमराजश्च कुमारो जाङ्गलेश्वरः ।
इन्द्राद्याः लोकपालाश्च पूजनीयाश्च भूगृहे ।२५।

वृत त्रये पूजनीयं गुरुपङ्क्तित्रयं शिवे ।
दिव्य सिद्धोथ मर्त्यौघगणा गन्धाक्षितैः प्रिये ।२६।

वासुकिः नीलनागश्च तक्षकः पद्मनागकः ।
पूर्वादिर्दिक्षु संपूज्याः विदिक्षु शृण पार्वति ।२७।

काकोटिकः शङ्खपालः कुलिकः शेष ईश्वरि ।
आग्नेय क्रमतः पूज्याः ब्रह्माद्याः मातरस्तथा ।२८।

भैरवाद्याष्टौतु संपूज्याः वामावर्तेन पार्वति ।
ब्राह्मी च वैष्णवी चैव रुद्राणी चापराजिता ।२९।

कौमारी चैव चामुण्डा वाराही नारसिंहिका ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधी चोन्मेत्त भीषणः ।३०।

कपालेशश्च संहारः पूजनीयः यथा क्रमम् ।
श्री दुर्गा शारिका देवी वैष्णवी च शिवा प्रिये ।३१।

वालिका त्रिपुरा चैव वामावर्त्ते षडश्रके ।
लक्ष्मी सरस्वती बाला पूजनीया त्रिकोणके ।३२।

बिन्दौ राज्ञप्रदा राज्ञी विद्या पञ्चदशाक्षरी ।
फलप्रदं महेशानि पञ्चाङ्गमिदंमीरितम् ।३३।

नोट :– इस सब का विवरण श्री महाराज्ञी के विशुद्ध श्रीचक्र में वर्णित है अथात् इन्ही श्लोकों के आधार पर विशुद्ध श्रीचक्र की रचना की गई है । जो पुस्तक के अन्त पर संलग्न है ।

श्री भैरव उवाच

खड्गं पद्मं सुधापात्रं घटं भूतेश्वरं वटुम् ।
योगिन्याः क्षेत्रपालौच पूजयेत फल प्राप्तये ॥

अन्तपर श्री भैरव जी कहते है, सुनो भैरवि । प्रत्येक भक्त को चाहिए कि वह अपनी फल प्राप्ति के लिए श्री भगवती के चारों आयुधों (खड्ग, कमल, जलपूर्ण कलश तथा अमृत पात्र) भगवान् भूतेश्वर, वटुकदेव, ६४ योगिनियों और क्षेत्रपाल को भी भगवती के पूजा मण्डप में स्थान देवें, अर्थात् इनकी भी यथा विधि भगवती के पूजन के साथ पूजा करें ।

अन्त में हाथ जोड़कर भगवती महाराज्ञी के चरण-कमलों का ध्यान कर यह प्रार्थना करें ।

प्रसीद परदेवते ! मम हृदि प्रभूतं तमो
विदारय, दरिद्रतां दलय, देहि सर्वज्ञताम् ।
विधेहि करुणानिधे चरण पद्म युग्मं स्वकं
विदारित जरा मृतिं त्रिपुर-सुन्दरि ! श्री शिवे ! ॥

कल्याणि राज्ञि जगदीश्वरि विश्वमातः
त्वामन्तरेण नहि देवि सुखं जनस्य ।
पुत्रस्य दुःख हरणे सततोद्यता द्राक्
मातैव हि स्नुत कुचा नु भवत्यवश्यम् ॥

आकाशे चण्डिका देवी पाताले भुवनेश्वरी ।
मर्त्य लोके जया देवी पायात् त्रिपुर-सुन्दरी ॥

"Shri Shri
Maha Rajni Pradur-Bhavah"

(Appearance of the towering queen-Goddess in immanent from).

I CANTO :-

X. BHAIRAVI ENQUIRES .-

VERSE I : "That manifestation of the Goddess Tripura, known as Dvitiya and Taruna, was propitiated by the highly gifted Ravana - the demon.

2. (He) installed (her image) in a pond replete with countless snakes at the North-Eastern quarter of Lanka. Seemingly She (the Goddess) looks like Tamasi; What is She in essence? unfold to me O, my Lord, who art the last word on such (esoteric) knowledge.

3. O! Great Lord. Does She comprise inertia, mobility or transperance ? I have heard like this in Kashmir-the land of piety :

4. That Goddess has stationed herself near the outskirts of Harmukha mountain for dispelling the impediments (of the devotees) : In Kali age She is unalloyed transperance (by demeanour) and strictly vegetarian (by profession) ; even the gods can scarce place Her in essence.

5. With the intention of doing a favour to the humanity, O God of gods ! spell out candidly as to how and by whom She (the Goddess) was carried there and in what form She was established (in Kashmir)".

6. **Bhairava Replies :-**

"Lend ear to me, O charming (Bhairavi) : I shall describe to you the telling adventures of Taruna; by mere listening to these, the devotee can attain omniscience.

X-for such and other occult terms, the Hindi portion may please be consulted usefully.

7) In the preceding age (Treta) Pulastya had a son Ravana by name, who was possessed by spite, short-temper. ego and vanity.

8. For one lakh of years he performed the most formidable penance standing on the big toe of one of his feet with his respiration firmly controlled and without any food whatsoever.

9. Propitiating the author of this whole Universe, he gained mastry over his mind and sense - organs. O Self - Dependent Goddess ! once performing this most arduous penance (Ravana perceived)

10. A host of hunters giving a chase to a herd of boars in hot-haste with bows in their hands.

11. Those creatures (the boars) being frightened, repaired to the hermitage of Ravana; though at their wits end, these could not be slain by the missiles of the hunters.

12. Even though having attained mental equipoise, Ravana on seeing his penance - grove in utter disorder and confusion, reverted back to his former spiteful nature, muttering the incantations with divided attention.

13. (In this confused state of mind) Having meditated upon the Supreme Conscious spirit, he (Ravana) naturally got a disdainful glimpse of Almighty Lord Shiva with his Unsavoury form of three eyes.

14. 'I shall annihilate all these hunters and creatures (boars) thronging every nook and corner here, with the strike of a single arrow ;' (Ravana though bubbling with spite) respected the discipline relevant to the place where meditation is undergone.

15. Thereafter, He (the Great Lord) revealed His illusory form to him (Ravana), who on perceiving it eulogised it and bowed unto it with extreme reverence.

16. That Almighty Transcendence asked him to opt for a boon and exhorted Ravana the demon, to propitiate the Primal Energy—His immanent form.

17. "That Tamasi is beyond the three qualities (of inertia, mobility and transperance), is glued with the towering Shyama, the evergreen Energy, worshipped with the fifteen syllabic instants (incantation).

18. O Ravana! fix your mind upon Her mobile yet illusory form since you do not refrain from hurting the creatures, though immersed in my thoughts".

19. Hence, you seek refuge in that Great Goddess forthwith, at whose command the three worlds exhibit clock-like regularity; who shall forsooth, provide you with all what you wish for".

20. That Almighty Lord of gods having delivered this exhortation to him, the highly gifted Ravana engaged himself in muttering the incantations pertinent to Goddess Tamasi, ever young and shimmering with solar lustre.

21. After a lakh of years (during which Ravana was incessantly undergoing this mental drill) that Great Goddess approached him (addressing him thus) "O, my loving child ask for a boon which may even be unattainable by Kumara (Her own beloved son).

22. I shall grant to you the unrivalled sovereignity over the three worlds along with the bounties lasting for three ages. Hence, I take you in my service.

23 If yon desire anything else even unobtainable by the gods, I shall verily grant that also. Whatever mental craving you have, ask for its fulfilment".

24. Having been addressed by the Great Goddess like this

Ravana, the first best among the demons, beseeched the Consort of Shiva, the dispeller of the cycle of births, in this polished and sweet language :-

25. "O Great Goddess! If you elect to do me a favour, then reside permanently in my house and always be available to me".

26. "Having been thus implored by that highly talented demon Ravana, the Great Goddess with cheerful spirits, condescended to make it (Ravana's house) a permanent habitat for Her own self (in the shape of) a huge furrowing flame surrounding the pond of Ananta (infested with numerous snakes).

27. Armed with the four weapons-the goad, the noose, the bow and the arrows-in three-eyed manifestation, mounted on a majestic lion that Tamasi-The Immanent Energy

28. Shyama by name. possessing youthful dark-blue hue, stationed at the north-eastern quarter of Lanka (began to be) worshipped by the demon (Ravana) with unfaltering devotion, with offerings of buffaloes, honeyed-beverages, and a bevy of human-beings.

29. Since then, O Bhairavi! that Shyama acquired the signal honour of being the tutelar deity of the hordes of demons in the entire world. That very Shyama, the towering Goddess, was attended upon by these demons.

30. (That very Shyama) verily the evergreen Tamasi, the sparkling digit of Tripura, in the end, got suffocated there by the unwholesome acts of the demons.

31. When being stationed in his (Ravana's) house, she felt vexed by his omissions, She made a well - considered resolve to procecd to Sati-Desha (Kashmir).

32. Having repaired to Sati-Desha in the vicinity of Haramukha mountain, She ushered in the rule of law and piety, so

came to be known as the Great Empress (Maha Rajni).

33, O Devi : mounted on the serpent-King Ananta, surrounded by three hundred and sixty snakes, she was carried there by Hanuman.

34. It has been said that the periphery right from the towering Harmukha mountain, 'Ledu' and Bhaga' are unequalled (in their sanctity) throughout the world.

35. O Bhairavi of exquisite beauty ! where the ever-bountiful land is (as easy to handle) as the soft cotton, which can be had for none too exhorbitant rates, (that place) has thus earned the name of "Tulamulyakam (Tulmula).

36. On having stayed here, She became calm and composed, (Her) diet being milk, candy and clarified butter. The Goddess personified in Herself the all-pervading transperance and the occult incantation of fifteen syllables.

37 By dint of Her propitiation, the sages obtained highest heavens. Shri Rama through Her worship alone could put Ravana to sword.

38. It was through Her Grace O Devi ! Ravana's elder brother Bibhishana with tranquility of mind. acquired more than enough sovereignity over Lanka.

39. By pinning their faith in Her, all and sundry did achieve mentionable success. That very Shyama who sanctified the home of the King of Lanka (Ravana) in the days of yore.

40. Now, on repairing to Sati-Desha (Kashmir) came to be known as Maha Rajni (The Mighty Empress). She ushered in the rule of law and piety ; She is ever-youthful embracing all the digits of moon.

41. Approaching Her through mind, bestows emancipation immediately. O Self-dependent Goddess ! She grants sons (to ths sonless) and riches to those who crave for these.

42, Those who desire to acquire knowledge, She grants unerring comprehension; Those who pine for a daughter are rewarded with a daughter. Without any hesitation whatsoever, She bestows wealth, corn, cattle, house and land (on her votaries).

43. Undoubtedly through the grace of that Almighty Goddess, (Her worshippers) traverse the heavens, the space and the earth (with equal ease). Terrible calamities

44. Unnerving fear of infections as well as contagious diseases, the scare born out of famine, the wrath of kings, are verily dispelled by Her undivided propitiation.

45. The troubles of that (votary) who is overwhelmingly obsessed by these, are set at nought. The afflicted is divested of his ailments, and the one who is bedevilled by misfortunes is brought back to affluence.

46. He who mutters Her incantation along with its relevant discipline quielty and far removed from public gaze, assimilating good - fortune is finally identified with the Supreme Spirit.

47. He who adores Her mystical linear diagram, does surely amass auspicious merit. Or the one who eulogises the Universal Matrix with vocular incantations.

48. Forsooth, his speech will flow like the Ganges. This is the fifteen syllabic incantation, ever - chaste and young, embracing the entire gamut of Lunar digits.

49. That very Tripura, the Queen Par - excellence known as Maha Rajni, personifying calm composure, is meditated upon by those who possess mental poise of highest magnitude.

50. When having agreed to reside in the house of Ravana, that Super-Fortunate Goddess represented inauspicious Tamasi digit, and was (consequently) propitiated with (an incantation) consisting of twentytwo syllables.

51. That very celebrated Shyama given to unwholesome diet, the crest of the gods arrived in Sati-Desha (Kashmir), being personally carried there by Hanuman.

52. Accompanied by the Lord of Serpents Ananta, the vehicle for blessing Shri Rama with unblurred preception, (That very Goddess) when worshipped, grants the desired boons.

53. O Devi ! I have unfolded all this to you responding squarely to your queries ; that "Shyama" in the domicile of Ravana has earned the appellation of "Rajni" (on coming to Kashmir).

54. By mere listening to (this detail) in Kali age one reaps the virtue of ten thousand sacrifices, O Benevolent Lady ! by its mere recitation (the votary) is totally absolved of wordly limitations".

(Thus the first canto containing the description of "Tula-mulla" in the context of 'Maharajni' comes to a close).

"Shri Shri
Maha Rajni Pradur-Bhavah"

II CANTO.

SHRI BHAIRAVI ENQUIRES :-

VERSE I :- "O Omniscient Lord of Lords ! I beseech you to favour me in detail

2. As to who is that Goddess Tripura called as such? How She elected to become Shyama ? How did Shri Rama propitiate Her and how She came to Satipura (Kashmir).

3. O my beloved, the Great God ! (unfold) all this to me who am always at your beck and call".

SHRI BHAIRAVA REPLIES :-

4. "O Daughter of the mountains ! I shall enlighten you all about what you would like to know. Mere listening to it (in detail) every sort of prowess is bestowed (on the votary).

5. Ravana, the demon, was the son of Pulastya, the direct descendant of Brahma.

6. Out of compassion for him (once) Mahadeva, having seen the demon weep, asked Pulastya about the cause of it (weeping).

7. The sage (Pulastya) answered, "O Omnipotent Lord, he (his child Ravana) wants to appropriate Lanka". The Ox-driven Lord Shiva, with a smile, told the sage :-

8. "O, first-born (Brahmana) listen attentively ! this child, your progency, will undoubtedly bring disaster to the worlds.

9. O the parent of this demon (Ravana) ! I shall bestow upon him (Ravana) Lanka very dear to me, since in his earlier birth he has earned the pleasure of Brahma by his austerities.

10. Hence, having been granted a boon (by Brahma), he

will rule over Lanka uninterruptedly". Ravana, the tormentor of the worlds, on hearing these words

11. Smiled; bowing down his body out of reverence asked the Great Lord Who harbours affection for those who seek His refuge,

12. "Who is that Brahma, the author of this world, whom you have mentioned just now? You alone are all-pervading soul of Universe, O God of gods, the Great Lord!

13. O Omnipotent Lord! I, your own votary approach you with reverence; grant me refuge out of compassion. Whatever you said was for my upliftment.

14. I shall undergo the penance spelt out by the Supreme Almighty Shiva, by which I shall again gain favour with Brahma'. Even though in his teens, Ravana repaired to Vindhya range of mountains (for taking up this penance).

15. "O Devi! (consequently) Ravana undertook terribly arduous austerities for ten thousand years, even unthought of by the gods and the demons. Brahma was very much pleased with him.

16. Brahma being highly gratified, appeared there in person to grant boons to him (Ravana). "O, you the scion of of Pulastya of amenable demeanour! ask instantly as to what you wish to beg of me".

17. Having heard these celestial words, Ravana, the beloved of demons, O Benign Lady, gave this reply to Brahma the Great Grand-father (progenitor of this universe).

18. 'If You condescend to do me a favour, then, O you, the architect of this creation, grant Lanka to me for my residential purpose, proffering to me immense comfort, so that I become invincible'.

19. O you all-powerful Goddess! having heard such imploration from him (Ravana), Brahma blessed him thus: 'On

attaining Lanka you will become invincible through the grace of Lord Shiva'.

20. As long as the mighty immanent form of Primeval Energy (in the shape of) Sita is not brought to life, till then you will have eminent gods, mortals and demons

21. Under your thumb ; O Son of Pulastya! I vouchsafe to you the unfailing essence of what I have been pleased to grant to you'. Since then Ravana appropriated Lanka designed by Lord Shiva.

22. Getting hold of that Lanka, (Ravana) for ten thousand years propitiated Lord Shiva regularly, giving untold pin-pricks to the gods and providing every possible comfort to the demons.

23. O Devi, he (Ravana) performed rewarding penance on Malaya Mountain, the abode of gods ; still, Lord Shiva the Guardian-Angel of gods, could not be won over (by him).

24. Narada, the emissary of the Supreme Being, approached Ravana, and on comiug face to face with him, the Sage of eminence (Narada) addressed him thus :-

25. 'What of this, verily, O demon ! even though you have peeled off your heads. This exercise will be all in vain without earning the pleasure of Lord Shiva.

26 They both (Lord Shiva and His consort) in tune with the rythmic tappings of the drum beaten by Nandi, engrossed in the Lasya dance (are to be approached). They defy physical presence of theirs at Kailasha, at Meru and at Mandara. (They are to be approached mentally).

27. Wherever and whenever the Great Lord hears this voice of silence, He becomes visible there and then. Hurting the body, worship or recitation etc is of no avail here.

28. Undertaking auspicious austerities, O you Ravana! Shiva can be pleased only by this mental drill." Having said

so, Narada, the crest of Brahmanas, endowed with the perception of super-spirit, bid him (Ravana) farewell.

29. O Goddess Bhairavi ; bereft of other nine heads, the ten-headed demon (Ravana) with having only one frontal head left, bellowed out a terrifying and an unsalutary cry; (misconstruing the advice of Narada).

30. O Consort of Maheshwara ! (on second thought) he (Ravana) emitted a very soothingly sweet, imperceptibly awakening sound (through Yogic practice), by which the Great Lord

31. Was awakened through the good-offices of His principal attendant (Bhairava). Thus He manifested Himself before Ravana (saying) 'O demon King Ravana of evil conduct ! you have achieved what is actually unattainable. Whatever you desire to ask for, spell out immediately, even though that may be beyond the grasp of the gods and the demons.

32. (Ravana replied) 'O Great Master, I am wedded to your unflinching devotion ; restore all the ten heads to me as h d previously:

33. O Great Lord ! I may be gifted with immense affection for the demons' (Shiva replied) 'I confer Bhairavahood upon you, O fortunate one ; you will have all the pleasures which this life offers.

34. You will presently be restored to your ten-headed body as you had earlier. You will always find favour with the demons, O (Ravana) of irrefutable intellect"

35. Thus having attained this boon, the demon Ravana, the tormentor of the worlds, yoked himself entirely to providing fleeting comforts to his kin, the demons.

36. Assuming most terrifying form, puffed up with the vanity of wielding arms, he (Ravana) unleashed (a reign of)

terror and travail for sages, the humans and the gods.

37. The Blessed Lord, out of compassion for the human beings, for re-establishing the tenets of good bahaviour and piety, for rescuing the virtuous and for putting to sword the demons

38. During Treta Yuga, descended on earth in the sanctum of King Dasharatha as his son, with full-moon effulgence, multiplying the joy of Kaushalya.

39. O Benign Goddess! The protector of the Universe, Shri Rama, accompained by Sita, arrived (in Lanka) to annihilate Ravana for relieving the earth of its (unwholesome) burden.

40. With the Vanaras as His legions, That (Rama) of unerring comprehension, engaged Himself in a terrible war (with Ravana) in Lanka on the seventh (of the bright half of Asuj).

41. On seeing Meghanada and others slain, Ravana distraught with scare, asked Mandodari (his chief queen) as to how this (Shri Rama) can be despatched to death.

42. Mandodari replied :-

'O Ravana attend to me! out of love I remind you about what Narada has unfolded to you. Rama, the Fortunate Lord, the Saviour of Mankind will manifest Himself in human form,

43. Possessing dark - blue hue, donning dark-blue apparel always engrossed in the worship of 'Shyama' will get hold of Lanka as well as Sita, and after offering the royal crown to Bibhishana,

44. Will proceed back to his sanctuary in the Pushpaka Vimana (aeroplane). Hence, do all what you can in transferring the reins of the kingdom to Bibhishana.

45. (To avert such exigeney) you (on your own) return Sita to Shri Rama, we both shall seek refugee in Him - the shield of devotees, the Auspicious Shiva, the All - pervading Super-Soul and the most efficacious dispeller of the afflictions experienced by those who make obeisance to Him.

46. We both shal' strive to earn the favour of Lord Shiva- the unfathomable origin (of this Cosmos). In that very way, that Ever-Auspicious Blessed Lord Shiva will feel pleased.

47; We shall feel secure in the possession of Lanka as long as the life lasts'. Having thus heard such words from the lotus-like mouth of Mandodari

48. He (Ravana) paid no head to (this admonition) and went to the enclave specially reserved for sactrifices (where) Bhadra-Kali had been installed. Alongwith Mandodari, Ravana worshipped Her.

49. The King (Ravana) in a faint voice addressed Mandodari thus :-

'O Mandodari of immaculate beauty even if Shri Rama be the Blessed God in person

50. Engrossed in the propitiation of Shyama, I shall call him (Shri Rama) to this place. When he comes here along with his younger brother (Lakshmana) Hanuman and other allies.

51. I shall instantly offer Him (Shri Rama) along with his retinue, as a sacrifice to the Goddess. Consequently, Shri Rama was invoked by the demon-King Ravana.

52. There and then in the midst of the enclosure meant for Worship, Shri Rama manifested Himself. The tallest of demons Ravana of abominable disposition, addressed him thus:-

53. "If you wish to preserve your life unscathed, leave Sita here and bolt off to your habitat. Otherwise, I shall offer you as a sacrifice in accordance with the prescribed ritual"

54. That Lotus-eyed Shri Rama meditating upon the feet of Shri Shyama replied :-

'O depraved one of vile conduct, why should I return to my residence ?

55 I shall inevitably rescue Sita. In the wake of accepting the tutelage of Shri Shyama, I shall bring death to you, and will transfer sovereignity (of Lanka) to your brother (Bibhishana) who is a very well-disposed devotee of mine".)

56. On heariug these words (Ravana) was cut to quicks, and at the stroke of midnight on the eighth day (of the bright fortnight of Assuj) unsheathed his sword charging Shri Rama with the intention of inflicting injury on him'

57. At that very moment, the Blessed Goddess Shyama, with wrathful copper-red eyes, smiled a bit and addressed (Ravana) in the words sounding like fragrant black clouds.

58. The Goddess who provides sustenance to the whole creation said, 'Fie upon you, a degraded demon as you are : I shall (for sake you) and proceed to my choicest haunt in the splendid Himalayas

59 (Known as) Kashmir-the Satisara, observing 'vegetarian Vow'. Thereafter, Shri Rama in human form exhorted Hanuman:-

60. 'O Hanuman, the bravest of all, take eharge of the Almighty Goddess (Shri Shyama) and proceed with ever-nimble gait towards Kashmir. This (feat of yours) will plough back immense virtue to you'.

61. 'Let it be so', having said this, Hanuman planted the feet of Shri Shyama on his back and arrived in the northern region.

62. Shri Rama proceeding towards the metropolis, where the rendevous for him had been fixed for giving a fight (to

Ravana) said to his brave brother (Lakshmana). 'He (Ravana) shall be dead by tomorrow.

63. Laying our hands on Sita, we shall repair to our ever-hospitable Ayodhya'. Then in the morning, Ravana felt distracted on account of fear.

64. On reaching the battle-field, he (Ravana) addressed Shri Rama in these measured and slow words :- 'O super-wizard Rama ! renounce your ego and also banish (the thought of) Sita (from your mind).

65. Forsooth, repair to that asylum where your life will be saved. (on second thoughts Ravana added) No, never you cannot escape from here without measuring arms with me.

66. If you possess chivalry of any mentionable magnitude, then let us engage ourselves in a duel". Shri Rama told Ravana with extreme confidence, 'that is all right.

67. Do not take to flight from this battle-field, but come on let us challenge eath other". When it was mid-day on the ninth (day of bright half of Assuj), Ravana's courage ebbed away, for fear (of Shri Rama).

68. The demon, struck by Shri Rama with his weapons lost his life. (on getting rid of Ravana) celestial symphony was heralded, and the divine damsels began to dance (with jubilation)

69. The gods showered flowers on Shri Rama and the whole host of 'Vanaras' from all quarters gave a full throated cry (Long live Shri Rama).

70. From that date onwards on every fifteenth day of the bright fortnight of Assuj Shri Rama in the company of Sita undertakes a pilgrimage (to Kshir - Bhavani) in accordan e with the prescribed ritual

71. On the eigth and ninth day (of the bright half of the month of Assuj) Mandodari and Bibhishana (visit this shrine) respectively. The mighty Hanuman stands guard there for all the time to come.

72. On these auspicious days, the people should propitiate (the Devi) for all-round success. O! Auspicious Bhairavi, I have, in this way, unfolded to you as to how Goddess Rajni appeared in Cosmic form. By mere listening (to this account) proficiency of every denomination is achieved.

(Thus the second canto of "The appearance of Maha-Rajni", a leaf from Bhrngisha Samhita, comes to a close)

The End